हमारा साहित्य
सम्पादक :
श्यामलाल शर्मा
ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू
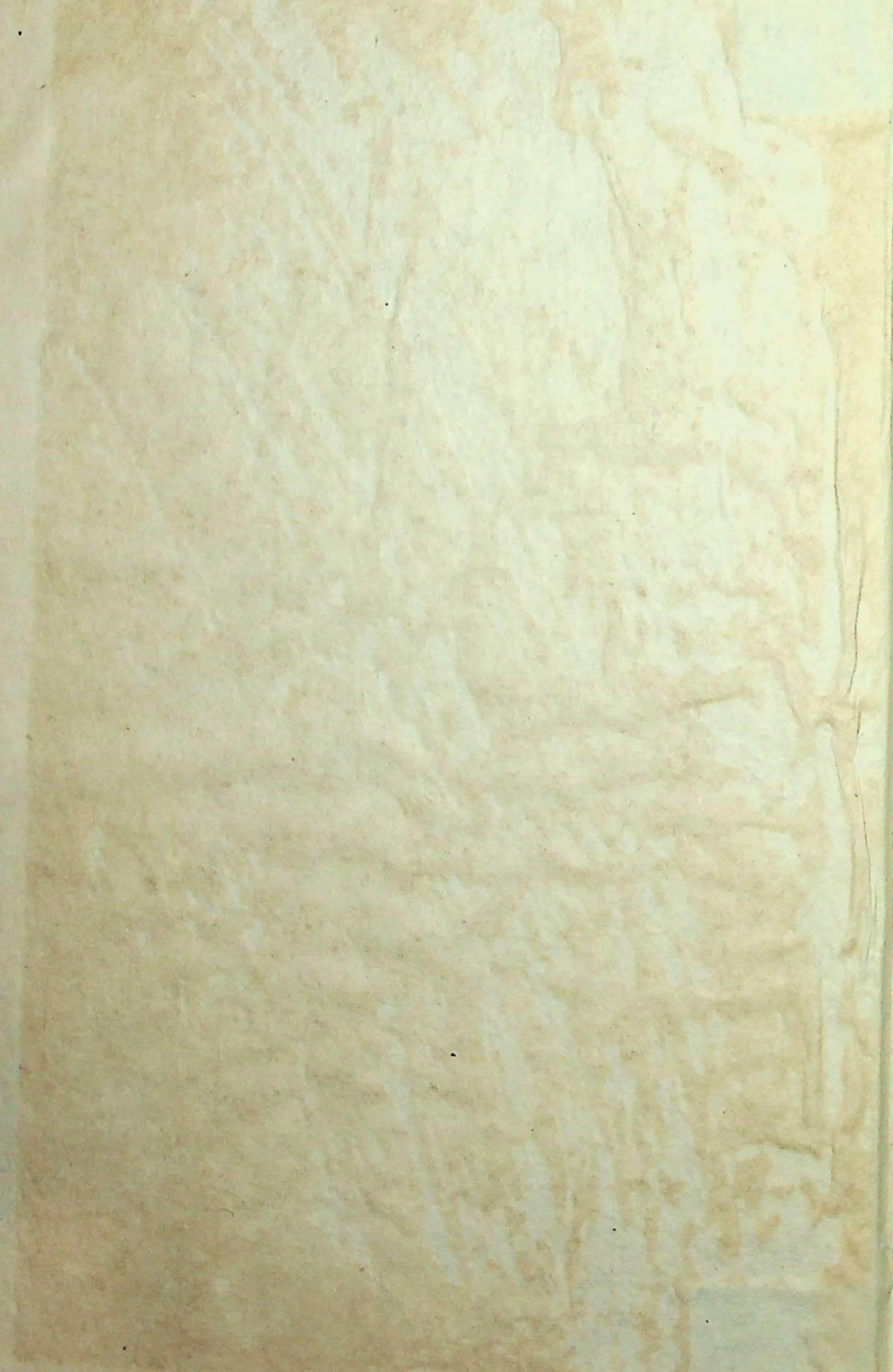
हमारा साहित्य

[१९७२]
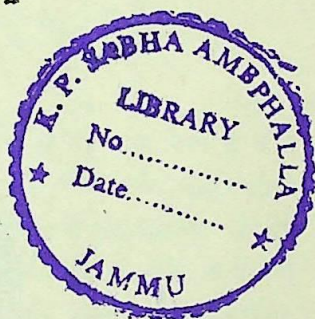
सम्पादक :

श्यामलाल शर्मा

ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी
जम्मू-कश्मीर
जम्मू

HAMARA SAHI
1972

Edited by
Shyam Lal Shar
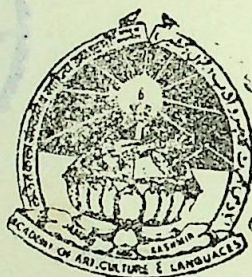
प्रकाशक :
ललितकला, संस्कृति तथा
साहित्य अकादमी,
नहर मार्ग, जम्मू

मुद्रक :
डोगरा प्रिंटिंग प्रेस,
कच्ची छावनी,
जम्मू

मूल्य : सात रुपये पच्चास पैसे

मार्च १९७४ में प्रकाशित

प्रतियां : ५००

हमारा साहित्य (१९७२)

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' गद्य को बुद्धि की कसौटी कहा गया है और उस में भी निबंध विधा लेखक की प्रतिभा तथा सतत परिश्रम का द्योतक होती है। कविता में ईश्वर प्रदत्त देन होती है परन्तु निबन्ध में शत प्रतिशत परिश्रम और सतत अभ्यास आवश्यक होता है। जयशंकर प्रसाद जी की कामायनी ईश्वरीय देन है परन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, शान्तिप्रिय द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र, जैनेन्द्र, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर और मदान, चौहान और स्नातक के निबन्धों में घोर तपस्या और निरन्तर लेखन साधना की गरिमा उस ईश्वरीय देन की तुलना में साधारण लेखक को अधिक स्फूर्ति और धैर्य प्रदान करती है। निबंध चाहे ललित हो, साहित्यिक हो अथवा समीक्षात्मक उस में लेखक के मन्तव्य, व्यक्तित्व और कृतित्व की झलक अवश्य मिलती है।

हमारा साहित्य १९७२ जम्मू कश्मीर प्रदेश के प्रमुखतः निबंध साहित्य का सुमन गुच्छ है जिस में हिन्दी और प्रादेशिक भाषा डोगरी विषयक परिचयात्मक निबंध हैं डोगरी भाषा और साहित्य स्वतन्त्रता के बाद कश्मीर घाटी में हिन्दी के पचीस वर्ष, कांगड़ी लोक गीतों में सावन वर्णन, हिमाचल की सांस्कृतिक झलक, कुल्लुई लोकोक्तियां, पाडर के पर्व त्योहार कश्मीर तथा डोगरी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक झलकियां उपस्थित करते हैं। डोगरी तथा राजस्थानी लोकगीतों में नारी चित्रण तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में सुन्दर प्रयास है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य की मुख्य उपलब्धि नयी कविता, आज की हिन्दी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियां, मुद्राराक्षस, साहित्यिक निबन्धों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रयास हैं। परमानन्द की कश्मीरी कविता कर्म भूमिका का हिन्दी अनुवाद कश्मीर के धर्म और दर्शन का परिचय कराने वाला सशक्त अनुवाद है। राष्ट्रीय एकता वर्तमान समय की आवश्यकता का पूरक सुन्दर प्रयास

है जिस पर और पहलुओं से भी विचार किया जा सकता है। गद्य की अन्य विधाओं में जीवनी, यात्रा, रिपोर्ताज, चरित्र, समीक्षा आदि में डा. सिद्धेश्वर वर्मा, एक महान् व्यक्तित्व, को संक्षिप्त रूप में ढालने का प्रयत्न है। आर्ष परम्परा के प्रतीक डा. सिद्धेश्वर वर्मा साधना और तपस्या की मूर्ति हैं जीवनी परक ऐसे प्रयासों से तथा विद्वत्ता के सत्कार से वातावरण में सात्विकता आती है तथा वह सात्विक सौरभ तपत्याग की पवित्रता का प्रसार करता है। अन्य विधाओं पर लेखनी न उठी हो ऐसी बात नहीं परन्तु 'हमारा साहित्य' की मर्यादाओं का पालन सीमा में रहने को बाध्य करता है।

कहानी और कविता के नमूने निबन्ध विधा की तुलना में चाहे उतने वजनदार न हों परन्तु इन में हिन्दी के नवीन तथा उदीयमान नक्षत्रों की चमक अवश्य है। आगामी वर्ष में 'हमारा साहित्य' सब विधाओं का प्रतिनिधित्व कर सके ऐसा प्रयत्न किया जायेगा।

श्यामलाल शर्मा

अनुक्रमणिका

लेख-लहरी

डा. सिद्धेश्वर वर्मा

श्यामलाल शर्मा

※

पंजाब और हरियाणा की सांझी राजधानी चण्डीगढ़ में सांसारिक द्वन्द्वों से ऊपर उठ कर केवल शब्द ब्रह्म की उपासना में लीन "शतं जीवेत" के ८६वें सोपान पर पहुंचे डा० सिद्धेश्वर वर्मा इस प्राचीन देश की साधनामयी आर्ष परम्परा के प्रतीक हैं।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पा कर भी मूक तपस्वी की तरह साधनारत इस मनीषी की भाषा सम्बन्धी सेवाओं की मान्यता के रूप में भारत सरकार ने सन् १९५७ में उन्हें पद्म भूषण की उपाधि से सम्मानित किया और १९६७ में पुन: राष्ट्रपति के स्वर्णपदक से उनके गम्भीर संस्कृत पाण्डित्य का सत्कार किया। विद्वत्ता के सत्कार से वातावरण में सात्विकता आती है तथा वातावरण में वह सात्विक सौरभ तप त्याग की पवित्रता का प्रसार करता है।

डा० वर्मा जी से मेरा पहला सम्पर्क सन् १९३८ में हुआ। उस समय डा० वर्मा प्रिंस आव वेल्ज कालेज (वर्तमान गवर्नमेंट गांधी मेमोरियल कालेज जम्मू) में संस्कृत के प्राध्यापक (प्रोफेसर) थे। मैं उस समय इण्टरमीजियेट (Intermediate) का छात्र था। संस्कृत पढ़ता था। कुन्दमाला नाटक का एक श्लोक डा० साहब ने दो महीनों में पढ़ाया और उस के साथ ही हमें लगा कि उन्होंने संस्कृत व्याकरण के सभी आवश्यक विषयों को हस्तामलक सा सरल करा दिया है। प्रत्येक रूप की निरुक्ति तथा व्याकरण के आधार पर परखने की पद्धति डा० वर्मा जी के अध्यापन की विशेषता रही है।

१९४१ में जब मैं बी. ए. के अन्तिम वर्ष में पढ़ता था जम्मू कश्मीर

सरकार ने भाषा बिज्ञान के एक विभाग की स्थापना की। रणवीर हायर सैकण्डरी स्कूल के प्रिंसिपल श्री तेजराज सहचर और उस समय विश्वेश्वरानंद शोध-संस्थान होश्यारपुर के रिसर्च स्कालर डा० राधा कृष्ण काव उस भाषा विज्ञान विभाग में प्रवेश पाने वाले पहले दो (स्कालर) थे डा० वर्मा इस विषय में रुचि रखने वाले छात्रों को भाषा-विज्ञान, उच्चारण-शास्त्र तथा स्थानीय और अन्य प्रमुख आर्य भाषाओं की तुलनात्मक चर्चा में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन दिया करते थे। मुझे भी उन व्याख्यानों में दिलचस्पी थी। इस भाषा विज्ञान की परीक्षा में मैंने भी भाषा विज्ञान सम्बन्धी दो पर्चे दे दिये और उनमें उतीर्ण हो गया। श्री काव बीच में ही भाषा विज्ञान की यह क्लास छोड़ गये तो उस स्थान पर शिक्षाविभाग ने मुझे ले लिया। उस वर्ष ग्रीष्म अवकाश में मैंने कुद में डा० वर्मा जी के साथ रह कर अपनी कमी पूरी की और अन्तिम परीक्षा में जिसके परीक्षक डा० सुनीति कुमार चैटर्जी डा० सी. आर. संकरन तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे उत्तीर्ण हुआ। डा० वर्मा जी जब १९४३ में कालेज के पद से रिटायर हुए तो राज्य सरकार ने भाषा सम्बन्धी यह विभाग भी बन्द कर दिया इस विभाग के दोनों उत्तीर्ण स्नातकों को एम. ए. के स्तर की मान्यता प्राप्त उपाधि (B. Linguistics) दी गई।

वर्तमान डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट जम्मू भाषा बिज्ञान की उसी क्लास की तथा डा० वर्मा जी के सम्पर्क की देन कहा जा सकता है। केन्द्रीय नागरिक उड्डयन तथा पर्यटन मन्त्री डा० कर्णसिंह इसके प्रधान संरक्षक तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा आदरी संरक्षक हैं। डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट की गतिविधियां इन दोनों महानुभावों के सत्परामर्श से संचालित होती हैं।

डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी ने १९६६ में अपने जीवन के ८० वर्ष सम्पूर्ण किये। डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट ने अपना १९६६-६७ का डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट निबन्धावली का वार्षिक अंक डा० सिद्धेश्वर वर्मा अभिनन्दन अंक के रूप में निकाला तथा इन्स्टीच्यूट के पदाधिकारियों ने चण्डीगढ़ जाकर एक समारोह करके उनके निवास स्थान पर यह अंक, मान पत्र तथा चीनांशुक भेंट किया।

डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी ने वर्षों से अपना जीवन वैदिक शोध संस्थान होश्यारपुर को समर्पित कर दिया है। अब उनकी प्रत्येक कृति,

उनका प्रत्येक लेख, पत्र उस संस्थान की सम्पत्ति होता है। डा० वर्मा जी ने ग्रियर्सन के महान तथा विशाल ग्रंथ लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार किया है। पश्चिमोत्तर भारत की छब्बीस भाषाओं तथा उपभाषाओं का एक बृहद शब्दकोष तैयार किया है। डा० साहब ने अपने शोध प्रबन्ध (Critical Studies in the Phonetic observations of Indian Grammarians) जिस पर लण्डन विश्वविद्यालय ने आप को सन् १९२३ में डी. लिट. की उपाधि प्रदान की थी) के लिए चार अध्याय और लिखे हैं। पंजाबी पहाड़ी डोगरी और हिन्दी भाषाओं के अनेक साधको (स्कालरों) ने आप के स्नेह पूर्ण निर्देशन में भाषा विज्ञान तथा उच्चारण शास्त्र सम्बन्धी जिज्ञासा शान्त की है। यह विद्यादान यज्ञ निरतर चल रहा है। आप ने भाषा विज्ञान के २०० से ऊपर ग्रन्थों का मन्थन करके नवनीत के रूप में (Readings in Linguistics) नाम से एक पुस्तक तैयार की है। इस क्षेत्र के विद्यार्थियों जिज्ञासुओं के अध्ययन अध्यापन के लिए यह अद्वितीय वस्तु है।

डा० साहब के सम्पूर्ण लिखित साहित्य को प्रकाशित करने के लिए भारत सरकार ने एक निश्चित धनराशि वैदिक शोध-सस्थान होश्यारपुर को दी है परन्तु अभी उन की रचनाओं का प्रकाशन सम्भव नहीं हो पाया है कार्य के लिए आवश्यक धन का प्रबन्ध हो जाने पर अब इस महत्वपूर्ण प्रकाशन कार्य में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं होना चाहिए। डा० साहब के जीवन काल में ही उनके ग्रंथों का प्रकाशन इस महान मनीषी के लिए भी सन्तोष प्रद रहेगा।

डा० वर्मा जी के अध्यापक जीवन का यौवन और तपस्या काल जम्मू में ही व्यतीत हुआ। आप १९१५ से १९४३ तक जम्मू प्रिंस आव वेल्ज कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक रहे। आप ने १९११ में इतिहास में एम. ए. किया और शाहपुर दर्बार में महाराज नाहरसिंह जी के निजी सचिव बने। वहां आप ने राजकुमार शत्रुंजय सिंह का अध्यापन भी किया। परन्तु विद्या की प्यास रखने वाला उनका जिज्ञासु स्वभाव इस कार्य से सन्तुष्ट न हुआ। अध्यापन की रुचि आप को कहीं अन्यत्र ले जाने को उत्सुक थी। परिणामतः जम्मू कालेज में संस्कृत पढ़ाने का सुयोग पाकर वे प्रसन्न हुए। जम्मू आप की बहुमुखी प्रतिभा के विकास की तपोभूमि रहा। यहां आप ने दर्शन शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया और परिणाम स्वरूप १९२३ में अंतर्राष्ट्रीय नैतिक

शिक्षा सम्मेलन के आदरी मंत्री के रूप में चुने गये। "इतिहास का अध्ययन सांस्कृतिक विकासार्थ होना चाहिये" इस भाव का प्रसार एक प्रश्नावली के माध्यम से आप ने संसार भर में किया। भिन्न २ देशों ने इसका सहर्ष स्वागत किया और इसे चरितार्थ करने में अपना २ योगदान भी दिया।

भाषाओं के प्रति आप के अनुराग को देखते हुए भारत सरकार ने आप को विदेश जाने के लिये छात्रवृत्ति दी आप ने लण्डन विश्वविद्यालय में (Critical Studies in the Phonetic Observations of Indian Grammarians) पर शोध प्रबन्ध लिखा और डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की। उन्हीं दिनों आप ने Phonetics (उच्चारण शास्त्र) का अध्ययण किया और श्री R. L. Turner और Daniel Jones जैसे विद्वानों को अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता से मुग्ध कर दिया।

डा० साहब ने उच्चारण शास्त्र का इतनी गम्भीरता से अध्ययन किया है कि उनके कान ध्वनि के सूक्ष्म से सूक्ष्म विकार को एक दम पकड़ लेते हैं उनका अनुभव इतना पैना और सतर्क है कि आधुनिकतम यंत्र भी उनके अनुभूत तथ्यों का समर्थन करते हैं। कुमाऊनी भाषा पर डा० जी के साथ काम कर रहे ब्रह्म परिषद चण्डीगढ़ के मत्री डा० देवीदत्त शर्मा अपने अनुभूत प्रयोगों को लेकर दक्कन कालेज पूना में गये उन्हें वहां यह देख कर बड़ा हर्ष और गर्व हुआ कि डा० वर्मा के साथ ध्वनियों के विषय में उन्होंने जो कुछ लिखा था लह यन्त्रों की सहायता से भी सही सिद्ध हुआ।

डा० साहब एक बार परिवार के तीव्र आग्रह पर फिल्म देखने गये तो उस चित्र में अभिनेताओं की Aspiration और Intonation की ही परख करते रहे।

डा० वर्मा ने व्यक्तिगत व्यय करके जम्मू कश्मीर के दुर्गम पहाड़ों में हाथ पावों के बल चल कर यात्रा की और भाषाओं और बोलियों का अध्ययन किया। गिलगित के समीप की बुशस्की भाषाओं पर संसार के तीन ही व्यक्तियों ने कार्य किया है उन में डा. वर्मा जी का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण है। डोगरी और पहाड़ी भाषाओं का गम्भीर अध्ययन तथा सम्पर्क २६ भाषाओं के उस शब्द कोश का आधार है जिस के सम्बन्ध में डा. वर्मा जी का लेख "मेरा हिमालय की बोलियों का शिकार" प्रकाश डालता है। All India

Oriental Conference अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के संस्थापक सदस्यों में आपका नाम प्रमुख है। प्रो. गौरीशंकर जी ने संस्था के आदरी मन्त्री के नाते डा. वर्मा जी को सुन्दर सहयोग प्रदान किया हुआ है। Linguistic Society of India और Indian Linguistics के आद्य निर्माताओं में भी आपका नाम प्रमुख है।

जम्मू कालेज से रिटायर होकर डा. साहब दिल्ली चले गये और वहां उनके निर्देशन में Linguistic Circle of Delhi नाम से एक भाषा विचार गोष्ठी का जन्म हुआ जो आज डा. चन्द्र शेखर के नेतृत्व में चल रही है। देहली में भारत सरकार ने भी आपकी सेवाओं का लाभ उठाया और केंद्रीय हिन्दी निर्देशानालय में आपको Officer on special duty नियुक्त किया। वहां आपने Glossary of Scientific & Technical terms नाम से एक पारिभाषिक शब्द कोश के निर्माण में सहयोग दिया और राष्ट्रभाषा की अभूत पूर्व सेवा की। इसी प्रकार नागपुर में डा. रघुवीर द्वारा बनाये जा रहे आंगल भारतीय कोष के निर्माण में भी उनका योगदान अविस्मरणीय है। आप बहुत समय तक Institute of International Culture, Nagpur की सेवा करते रहे हैं।

वास्तव में जहां भी डा. साहब रहे उनके आस पास साहित्यिक रुचि रखने वाले लोग इकट्ठे हो गये और किसी न किसी संस्था का जन्म हुआ। आजकल चण्डीगढ़ में जहां डा. वर्मा अपनी पुत्री के साथ रहते हैं इसी प्रकार का एक अध्ययन मण्डल 'शब्द ब्रह्म परिषद' के नाम से बन गया है और प्रत्येक रविवार को प्रातः दस से बारह बजे तक परिषद की साप्ताहिक बैठक होती है जिसमें स्थानीय विद्वान जैसे डा. देवी दत्त शर्मा और प्रोफेसर राम सिंह आदि सम्मिलित होते हैं। डा. श्याम लाल डोगरा का स्थानांतरण हो जाने से परिषद की मीटिंगों में कुछ ढील आ गई है परन्तु डा. साहब की गोष्ठी या कार्यक्रम निश्चित समय पर अनिवार्य रूप से चलता है चाहे एक ही सदस्य उस समय उपस्थित हो। 'परिप्रश्नेन सेवया' की पद्धति पर विचार विमर्श तथा तत्वचिन्तन होना ही चाहिये। डा. साहब प्रत्येक शब्द को पूज्य मानते हैं और सभी भाषाओं उपभाषाओं एवं बोलियों को वन्दनीय मानते हैं इसीलिये उन्होंने आपनी गोष्ठी का नाम 'शब्द ब्रह्म परिषद' रक्खा है।

डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी के काम करने का अपना अलग ही ढंग है। आप

फाइल पद्धति से काम करते हैं। किसी विषय पर उन से चर्चा की गई तो पहले वह उस विषय की जितनी जानकारी स्वयं जुटा सकेंगे जुटायेंगे और फिर तैयार होकर आप से बात चीत करेंगे। उस विषय की एक अलग से फाइल बन जायेगी और फिर डा० साहब की सुविधा तथा अपनी आवश्यकता अनुसार उस विचार तन्तु को फिर से जोड़कर बात आगे चलाई जा सकती है। डा० वर्मा जी का फाइलसिस्टम और पत्र व्यवहार इतना विशाल रूप ले चुका है कि उसे व्यवस्थित रखने के लिए अब एक विशेष कार्यालय की आवश्यकता है।

डा० वर्मा जी ने ७३ वर्ष की आयु में तमिल भाषा का अध्ययन किया और आज वह सम्पूर्ण तमिल साहित्य पर अधिकार रखते हैं। तमिल में बन रहे विश्वकोश में आपने इतना योगदान दिया है कि त मिल नाडू से एक विद्वान मण्डली ने चण्डीगढ़ आकर डा० साहब को आधुनिक पाणिनि की उपाधि प्रदान की। उन विद्वानों का कथन था कि उत्त र और दक्षिण भारत को मिलाने के लिए डा० वर्मा ने जितना काम किया है उतना सैकड़ों राजनीतिज्ञ बरसों में भी नहीं कर पाये।

डा० साहब का अध्ययन इतना विस्तृत और विविध है कि व्यक्ति आश्चर्यान्वित हो जाता है। आप जो भी सुन्दर वस्तु कहीं पाते हैं श्लोक, कविता, शेअर, लोकोक्ति अथवा सन्दर्भ आप उसे अपनी नोट बुक में उतार लेते हैं। उन नोट बुकों का एक विशाल संग्रह डा० साहब के पास हो गया है। कोई रिसर्च स्कालर उनको विषयानुसार व्यवस्थित करके और चयन करके शोध प्रबन्ध लिख सकता है। विषयानुसार इनका प्रकाशन साहित्यिक जगत् को बहुमूल्य रत्न प्रदान करने की क्षमता रखता है।

डा० साहब ने श्वेताश्वतरोपनिषद का भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पादन किया है। संस्कृत भाषा के महाकवि माघ के 'शिशुपाल बध' का अनुवाद और सम्पादन किया है। प्राचीन भारतीय वैयाकरणों का भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण तो डा० साहब का शोध प्रबन्ध है जो बम्बई विश्व विद्यालय में एम. ए. संस्कृत के लिये स्वीकृत ग्रन्थ है। 'काल चक्र' में आपने भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार समय के स्वरूप को स्पष्ट किया है। 'आर्याई जुबानें' भाषा विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर उर्दू भाषा में लिखे गये उनके लेखों का संग्रह है जो हैदराबाद दक्कन की तत्कालीन उसमानिया यूनिवर्सिटी के द्वारा तैयार किये जाने वाले उर्दू विश्वकोश के लिये उन्होंने लिखे थे। यास्क के

निरुक्त पर आपका ग्रन्थ विद्वत्ता तथा शोध का अनुपम प्रयास है। इसके अतिरिक्त उनके सैंकड़ों लेख भारत तथा विदेश की भाषा विज्ञान सम्बन्धी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

डा० वर्मा ५४ भाषाओं का ज्ञान रखते हैं तथा सात भाषाओं संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, डोगरी तमिल और यूनानी के साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है। गालिब, इकबाल और जोश मलीहाबादी तथा अन्य प्रसिद्ध कवियों के शेअर उन्हें याद हैं। दूसरी भाषाओं की काव्योक्तियों से उनका तुलनात्मक अध्ययन तो मानों सोने में सुगन्धि जैसा है। डा० साहब के साथ बिताये हुए दिनों में उनके सम्पर्क में आने वाले अनेक विद्वानों के साथ वार्तालाप में कुछ बातें ऐसी उपलब्ध हुईं जिन से जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का पता चलता है। एक प्रो. साहब ने पूछा डा. साहब आप १६ घण्टे प्रतिदिन इतना गहन अध्ययन करते हैं क्या आप कोई पूजा पाठ करते हैं और किस समय करते हैं। डा. साहब ने किसी उर्दू कवि का यह शेअर सुनाया :

मेरा हर नफस एक सजदा है ज़ाहिद,
मेरी ज़िन्दगी ही मेरी बन्दगी है।

(हे विरक्त। मेरा तो श्वास श्वास वन्दना है। मेरा जीवन ही अर्चना रूप हो गया है। मुझे पृथक पूजा वन्दना करने की क्या आवश्यकता है?) वह प्रो. साहब तथा अन्य सज्जन इस उक्ति पर झूम उठे। एक बार एक प्रो महोदय जिनका Ph. D. का Thesis अस्वीकृत हो गया था, शिकायक करने लगे कि आज तो परिश्रम की, गुण की कदर ही नहीं रही। तो डा. साहब ने डा. सुनीति कुमार चैटर्जी के Development of Bengali language तथा डा K. C. Pandey के Indian Aesthetics जैसी कृतियों के गहन तथा विस्तृत अध्ययन तथा लगन की चर्चा करते हुए कहा :

हुजूमे बुलबुल हुआ चमन में,
किया जो गुल ने जमाल पैदा।
कमी नहीं कदरदां की अकबर,
करे तो कोई कमाल पैदा।

(चमन में जब फूल ने अपना सौंदर्य प्रकट किया तो बुलबुलों का समूह एकत्रित हो गया। संसार में कदर दानों की कमी नहीं है कोई अपने में गुण

तो उत्पन्न करे।) मुझे लगा कि प्रो. महोदय का तो समाधान हुआ इस प्रकार सोचने वाले अन्य उपस्थित विद्वानों को भी आत्म निरीक्षण की प्रेरणा मिली।

एक बार गीता के कर्म, अकर्म और विकर्म की चर्चा चल रही थी। कोई विद्वान शारीरिक श्रम को कर्म और शारीरिक श्रम के अभाव को अकर्म कहने लगे। एक सज्जन ने कहा कि व्यक्ति जिस समय-अत्यन्त कर्म-शील होता है तो उस समय कर्म रहित लगता है जैसे पूर्णगति से घूमता हुआ लट्टू बिल्कुल स्तब्ध दिखाई देता है। डा. वर्मा जी कहने लगे कि कई बार बाह्य अकर्म निष्क्रियता दीखता है परन्तु वह अकर्म भी कर्म होता है।

दबे पाओं खमोशी नाचती है,
हो रक्सां जिस तरह ख्वाबों की धारा।

चुप का भी अपना संगीत होता है। उन्होंने बताया कल्याण की भावना लिये कर्म श्रेयस्कर है और कल्याण की भावना लिये अकर्म भी उतना ही प्रभावोत्पादक होता हैं। चमन में बुलबुल गाती है तो उस का गाना सब का मन-मोह लेता है। फूल चुपचाप अपने सौंदर्य का प्रदर्शन करता है परन्तु उस की चुप का प्रभाव और बुलबुल के गाने का प्रभाव एक समान ही है। उन्होंने निम्नलिखित शेयर सुनाया जिसे सुन कर सब आनन्द विभोर हो उठे।

इस चमन में पैरुए बुलबुल हो,
या तलमीज़े गुल
या सरापा नाला हो जा
या नवा पैदा न कर।

(इस संसार रूपी चमन में या तो बुलबुल का अनुयाई बन जा। अपनी मधुर संगीत ध्वनि से हर इक का मनमोहित करले। या फूल की भान्ति अपनी सुन्दरता का प्रदर्शन कर परन्तु मुख से न बोल।)

इसी भाव साम्य का एक और शेअर उन से सुनने को मिला :

नज़रें बुलन्द हों तो जमीं भी है आस्मां,
समश्रां कबूल हो तो खमोशी प्याम है।

अपना दृष्टिकोण स्पष्ट हो तो व्यक्ति कहीं भी गर्व से सिर ऊंचा करके चल सकता है। यदि सुनने की इच्छा हो तो ख़ामोशी से भी पैगाम मिल

सकता है।) डा. वर्मा ठीक सात बजे सायं अपने पढ़ने लिखने के कार्य-क्रम से मुक्त होकर मौन साधते हैं। परन्तु सैर को जाते हैं। सायं प्रतीची दिशा में उज्ज्वल नक्षत्र को देखकर वह प्रायः मन में दुहराते हैं :

कि कशीदा दामने फितरत
कि बसैरे मा ओ मन आमदी।
तू बहारे आलमे दीगरी,
जि कुजा दरीं चमन आमदी।

किसने तेरी फितरत का दामन पकड़ रक्खा है कि तू मैं और मेरी की सैर के लिये आ गया है। तू तो किसी और आलम की बहार है।
तू इस चमन में आया ही क्यों ?

प्रेम का सौन्दर्य के प्रति आकर्षण प्रायः विवाद का विषय बनता है और प्रेम को दोषी ठहराया जाता है परन्तु एक बार डा. वर्मा ने निम्नलिखित शेअर सुनाकर नव-युवक स्कालरों के चेहरों पर मुस्कराहट ला दी।

इश्क का जौके नज्जारा मुफ्त में बदनाम है।
हुस्न खुद बेताब है जल्वे दिखाने के लिये।

(प्रेम को लोग यूं ही बदनाम करते हैं कि सुन्दरता के पीछे भागता है। सुन्दरता स्वयं अपने प्रदर्शन के लिये लालायित रहती है।)

व्यक्ति का स्वत्व, उसका आत्माभिमान गर्व की वस्तु है। स्वाभिमानी साधक मांगकर मोक्ष की भी कामना नहीं करता। भगवान स्वेच्छा से नरक भी दें तो वह सहर्ष स्वीकार करता है।

वह खुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्त,
मांगी हुई नजात मेरे काम की नहीं।

(प्रिय स्वयं कृपा कटाक्ष करे तब मजा है। फिर तो नरक भी स्वर्ग समान हो जायेगा। मांग कर यदि मोक्ष प्राप्ति भी हो जाये तो इस से मेरे मन को शान्ति नहीं होगी)।

डा. वर्मा जी निम्न उक्ति प्रायः दुहराते हैं और उसमें उन्होंने वास्तविकता का निचोड़ निकालकर रख दिया है।

Linguistics died with Panini, Rationalism with Buddha and Internationalism with Guru Nanak.

आधुनिक युग के साधनों की अनुपस्थिति में पाणिनि ने जो संस्कृत

व्याकरण का निर्माण किया, उस में भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण को कमाल ढंग से सामने लाया गया है। इतनी पैनी और सूक्ष्म दृष्टि से भाषा विज्ञान पर किसने काम किया है ?

तर्कवाद महात्मा बुद्ध के साथ समाप्त हो गया। बौद्ध मत का प्रसार सारे संसार में महात्मा बुद्ध के बुद्धिवाद और तर्कवाद का करिश्मा है।

अन्तर्राष्ट्रीयता गुरु नानक जी के साथ समाप्त हो गई। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहने वाले बहुत हुए परन्तु जिस प्रकार विश्व बन्धुत्व का पाठ गुरु नानक ने पढ़ाया वह अपनी मिसाल आप ही है।

डा. वर्मा इस समय अपनी सुपुत्री श्रीमती सुमित्रा के पास चण्डीगढ़ रहते हैं।* उनके दामाद हरियाणा सरकार में शिक्षा सचिव हैं। इस वृद्ध अवस्था में डा. वर्मा जो कुछ भाषा विज्ञान और साहित्य को प्रदान कर रहे हैं उसका सम्पूर्ण श्रेय इस दम्पती को जाता है। उन्होंने अपनी जीवन पद्धति डा. वर्मा जी की सुख-सुविधानुसार निर्मित कर ली है। डा. साहब के आहार में सेब चाहिये, मौसम्मी चाहिये, या कौनसा खाद्य या पेय चाहिये इसका उत्तरदायित्व सुमित्रा दीदी पर है। सेब चण्डीगढ़ से उपलब्ध होगा, दिल्ली से आयेगा, या हिमाचल के किसी सेब उपवन से आयेगा इसका प्रबन्धभार भी सुमित्रा जी पर है। डा. साहब का दैनंदिन कार्यक्रम निर्बाध चलना चाहिये। यह देख रेख सुमित्रा जी की है। पुत्री ने माता का रूप धारण किया है। संसार की विभूति डा. वर्मा को संसार के लिये सुरक्षित तथा उपयोगी बनाये रक्खा है।

गत ६३ वर्ष से अबाध गति से १६ घण्टे प्रतिदिन निरन्तर साहित्यिक अध्ययन-अध्यापन; विचार, मन्थन तथा मनन संसार के इतिहास में अनुपम उदाहरण है।

परमात्मा से प्रार्थना है कि इस मनस्वी ऋषि की तपस्या से पृथ्वी पुनीत हो और सात्विकता की वृद्धि हो।

---

*हमें खेद है कि २१ दिसम्बर १६७२ को उन का स्वर्गवास हो गया।

डोगरी भाषा और साहित्य —स्वतन्त्रता के बाद

रामनाथ शास्त्री

※

डोगरी भाषा भी पुरानी है और डोगरी की साहित्यिक परम्परा भी लेकिन मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि डोगरी भाषा के बारे में रुचि और दिलचस्पी देश के स्वतन्त्र होने के बाद ही पैदा हुई। इसी अरसा में इस में साहित्य लिखने का रुझान पैदा हुआ। डोगरी का लगभग सारा छपा हुआ साहित्य १९४७ के बाद की उपज है। इस लिए डोगरी भाषा और साहित्य की इस चर्चा की सीमा-रेखा के बारे में किसी तरह का कोई सन्देह-भ्रम नहीं है। मैं यहां प्रधान रूप से डोगरी भाषा के ही एक दो पहलुओं के बारे में कुछ विचार आप के सामने रखना चाहूंगा।

डोगरी भाषा उत्तर भारत की दूसरी छोटी-बड़ी आर्य भाषाओं हिन्दी-उर्दू - पंजाबी - राजस्थानी - गुजराती - मराठी - उड़िया-बंगाली असमिया-नेपाली आदि के बड़े भाषायी परिवार का ही एक अंग है। इस का सम्बन्ध (भाषा-विज्ञानियों द्वारा किए गए) इस बड़े परिवार के (विभाजन के अनुसार) पच्छमी पहाड़ी शाखा से है जिस वर्ग में कुमाऊं, गढ़वाली और हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी प्रदेशों की पहाड़ी बोलियां (सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, कुल्लुई, मंडयाली तथा पहाड़ी चम्बयाली) शामिल हैं। हमारी रियासत के भद्रवाह प्रदेश की भद्रवाही भी इसी 'पहाड़ी वर्ग' की बोलियों में गिनी जाती है। इन पहाड़ी बोलियों के पहाड़ी प्रदेशों से नीचे, जोटा पहाड़ी प्रदेश और

मैदानों-घाटियों में कांगड़ी, भटियाली, कल्हूरी, कंडियाली (शाहपुर कंडी) और डोगरी (जम्मू प्रान्त) प्रमुख जन-बोलियां हैं। इस दूसरे वर्ग की बोलियों के बोलने वालों को ही प्रायः डोगरे कहा जाता है।

डा. ग्रियर्सन ने कांगड़ी, भटियाली, कल्हूरी तथा कंडियाली को डोगरी के अन्तर्गत रखा है तथा ऊपर की बोलियों को 'पहाड़ी वर्ग' का नाम दिया है।

डा. ग्रियर्सन का Linguistic Survey of India (9 Volumes) बड़ी विशाल रचना है लेकिन डोगरी के बारे में इनके कुछ निष्कर्ष हकीकत से दूर थे। उन्होंने डोगरी को पंजाबी की उपभाषा (Dialect) घोषित करते हुए लिखा :—

"Panjabi has two dialects—the ordinary idiom of the language and Dogra or Dogri. The later in various forms is spoken over Sub-montane Portion of the Jammu State and over most of the Head Quarters Divisions of the Kangra district with an over-flow into the neighbouring parts of the districts Sialkot and Gurdaspur and of the State of Chamba.

(L. S. I. Vol. IX Part I)

इस घोषणा पर हमारा रोष किसी भावुकता के कारण नहीं था। उस का कारण था कि उन का वह फैसला भाषा-विज्ञान की दृष्टि से गलत था। जिस सामग्री को, भाषा के जिस नमूने को, सामने रख कर डा. ग्रियर्सन ने यह नतीजा निकाला था, वही गलत था। उस से वही निष्कर्ष निकल सकता था जो उन्होंने निकाला। ज़ाहिर है कि इतना विशाल 'सर्वे' (Survey) अकेले ग्रियर्सन का काम नहीं था। सभी प्रदेशों में उस वक्त के प्रशासन ने उसे पूरा-पूरा सहयोग दिया था। दुर्भाग्य से डोगरी के प्रदेश में, डोगरा शासकों की छत्रछाया में यह सहयोग लगता है उन्हें गलत हाथों के द्वारा दिया गया। उस समय डोगरा सामन्ती शासन के नीचे सारा प्रशासन, डुग्गर के शहरों का सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन ऐसे तत्वों से प्रभावित संचालित था जो डोगरा नहीं था। नतीजा यह हुआ कि डा. ग्रियर्सन को डोगरी का भाषायी विश्लेषण करने के लिए इस शासन-तंत्र के किन्हीं पुर्जों ने जो सामग्री मुहय्या की उस का नमूना यह लोक-गीत देखिये :

हां रे, जिश्रा घबरोन्दा चेत मेरा गदिए की चाऊहन्दा केन वेद
मिलिये गदिए—की जाय के

हां रे, पंज ठग च'डरां गदिए—दा रहा भही ल'उट लइन्दे ता'रे
गेन्दी नू रएण व एहावई
हां रे, इच्छक अनोउखा लाड़ए की गदिए दा होएआ—केन
वेद मिलिये...
हारे करकै म्हावता मान'उए दे राह बैच रहद ए—तारे गेंदी
नू रैण

डोगरी भाषा के साथ यह खिलवाड़, डोगरी की बदनसीबी थी। इसी स्थिति का नतीजा है कि हमारी रियासत में स्कूलों-कालजों में पंजाबी तो एक स्वतन्त्र भाषा के तौर पर न जाने कितने दशकों से पढ़ाई जा रही है लेकिन डोगरी अपने ही घर में लाचार प्रवासिनी बना दी गई है। जो पंजाबी पढ़ना चाहें उन्हें पंजाबी ज़रूर पढ़ाई जानी चाहिए। लेकिन डोगरों के प्रदेश में उनके बच्चों को मादरी ज़बान पढ़ने का भी हक था जो उन्हें नहीं मिला। इसी वेदना को प्रकट करते हुए श्री दीनू भाई ने अपनी एक कविता में चीत्कार की थी :

लोक मीणे मारदे, ए डोगरें दा राज ऐ।
डोगरें दा हाल मंदा, जुड़दा नि साग ऐ।।

डा० ग्रियर्सन के इस गलत फैसले ने लगभग एक सदी तक, डोगरी के विकास तथा उसकी स्वतन्त्र भाषा के रूप में मान्यता को रोके रखा। भाषा-विज्ञान की कोई किताब उठा कर देखिए, भारत के भाषा-विज्ञानियों ने आंखें मूंद कर डा० ग्रियर्सन की इसी गलत बात को बार बार दुहराकर डोगरी के साथ ज्यादती और बे-इन्साफी की है, और १९४७ ई० के बाद रियासत का जन-जीवन जब सामन्ती गुलामी के इस जूए से छूटा तो मुक्ति के इस अती धुंधले वातावरण में डोगरी ने अपने आपको पहचानने का पहली बार साहसपूर्ण यत्न किया और लगभग २० वर्षों की साधना के फलस्वरूप दो अगस्त '९६९ के दिन साहित्य अकादमी (दिल्ली) की जनरल कौंसिल ने डोगरी को भारत की एक स्वतन्त्र आधुनिक साहित्यिक भाषा के तौर पर मान्यता दे दी।

"The Genesal Council of the Sahitya Academy has accorded recognition to the Dogri as an independent, modern, literary Language of India.

The recognition was accorded on the unanimous recommendation of a committee of Linguist experts to which a reference was made."

—Indian Express (New Delhi)
3rd August, 1969.

इस मान्यता के लिए डोगरी के साधकों को कितना प्रयत्न करना पड़ा होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। क्योंकि साहित्य अकादमी किसी भाषा को ऐसी मान्यता आसानी से नहीं देती।

इन पच्चीस वर्षों में एक ओर डोगरी (भाषा) के भाषा-शास्त्रीय (Grammatical) और भाषा-विज्ञानी (Philological) अध्ययन के बारे में संजीदा प्रयत्न किए गए और दूसरी ओर डोगरी में नए साहित्य के सृजन की दिशा में ठोस कोशिशें की गईं।

१९४७ ई० से पहले, यह दोनों तरह के काम, क्यों नहीं हो सके और १९४७ ई० के बाद ऐसा क्यों मुमकिन हुआ—ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, लेकिन इनकी विस्तृत चर्चा मेरे इस लेख का विषय नहीं है। १९४७ से पहले डोगरी भाषा दोहरी मजबूरियों में दबी थी। सामन्ती परवशता और बाहिर के उस प्रभाव की परवशता जो डोगरों तथा डोगरा जीवन की परम्पराओं की खिल्ली उड़ाता था। आज़ादी के बाद भी डोगरी भाषा के विकास के रास्ते की रुकावटें एक दम दूर नहीं हो गईं।

सन् १९५० की बात है, सूचना तथा प्रसारण (Broadcasting) विभाग के लोकतंत्री मंत्री (जो पंजाबी थे) के आदेश से जम्मू रेडियो के प्रसारनों में डोगरी-डोगरा और डुग्गर इन शब्दों के प्रयोग की मनाही करदी गई थी। यह बात उसी वर्ष बावा जित्तो समारोह के सिलसिले में एक प्रोग्राम के दौरान मैंने उस मंत्री की मौजूदगी में कही थी तो वे सिर्फ बौखला कर रह गए थे। उन्हीं दिनों जम्मू में होने वाली डोगरा आर्ट की एक बड़ी नुमाइश की चर्चा भी सूचना विभाग के एक सरकारी प्रकाशन में "बसोहली पेंटिंग्स की नुमाइश" का नाम देकर की गई थी। असलीयत यह थी कि उस नुमाइश में, जिसका इन्तज़ाम शिक्षा विभाग ने डोगरी संस्था के सहयोग से किया था, बसोहली कलम का एक भी चित्र नहीं था।

इस मनोवृत्ति के बावजूद जम्मू में स्थायी रूप से डोगरा आर्ट गैलरी

की स्थापना हुई है और इसकी स्थापना में डोगरी संस्था का अर्थात् डुग्गर की जन-चेतना का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान था।

खैर, यह मेरे आज के प्रसंग से ज़रा बाहिर की बात थी, लेकिन इस से यह हकीकत तो सामने आती है कि सामन्ती युग की उस उपेक्षा और उदासीनता के बाद जनतन्त्री युग में भी डोगरी भाषा और व्यापक रूप से डोगरा संस्कृति की नव चेतना के लिए वातावरण एकदम अनुकूल नहीं हो गया था। मैं फिर अपने मूल प्रसंग पर आता हूं। बात डोगरी भाषा की चल रही थी। डोगरी भाषा के साइंटीफिक अध्ययन में कुछ काम हुआ है। जिन विद्वानों ने यह काम किया है उन में सरे-फहरिस्त अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भाषा विज्ञामी डा० सिद्धेश्वर वर्मा (पद्म भूषण) हैं। इन्होंने रुधाटी, भद्रवाही, भलेसी, डोगरी तथा व्यापक रूप से N. W. Himalayan Indo-Aryan Languages के विविध पहलुओं पर बड़ा महत्वपूर्ण काम किया है।

डोगरी के बारे में उन्होंने अपने एक लेख में लिखा था :

"Of the seven families of languages in India the Dogri Language occupies an important place philologically, for it is a frontier language.......................

Dogri must be taken as an independent dialect and not a dialect of any other language like Panjabi and Pahari.

प्रो० गौरी शंकर, श्री बसी लाल गुप्ता, डा० वेद घई, शिव नाथ, शामलाल शर्मा, प्रो० सत्यपाल, तेजराम, प्रो० लक्ष्मीनारायण, शिवराम दीप, आ० किशोरी दास बाजपेई, प्रो० बालकृष्ण तथा प्रो० ओम 'गुप्त' (डा०) आदि कुछ और नाम हैं जिन्होंने डोगरी के भाषायी विकास के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले लेख लिखे हैं। 'डोगरी भाषा और उसका व्याकरण' नाम से रियासती अकादमी द्वारा छापी गई पुस्तक में श्री बंसी लाल गुप्ता ने डोगरी व्याकरण की रूप रेखा प्रस्तुत करने का पहला महत्वपूर्ण यत्न किया। दूसरा महत्वपूर्ण यत्न था डोगरी संस्था जम्मू द्वारा नवम्बर १९७१ ई० में आयोजित 'डोगरी शब्द जोड़ सेमिनार'। जिसमें डोगरी के लिखित रूप को स्थिर करने के सम्बन्ध में लगभग २० लेख पढ़े गए थे। इसी दिशा में काम करने के लिए जम्मू में डोगरी रिसर्च इस्टीच्यूट नाम की एक संस्था १९६४ ई० में

स्थापित हुई थी। इसके तत्वावधान में डोगरी के भाषायी अध्ययन के सम्बन्ध में जो लेख पढ़े जाते हैं वे सब इंस्टीच्यूट के सालाना प्रकाशन इंस्टीच्यूट निबन्धावली में पुस्तक रूप में छप जाते हैं।

इस समय डोगरी के इसी पहलू को उजागर करने वाले दो शोध-प्रबन्ध भी लिखे जा रहे हैं। प्रो० बाल कृष्ण 'हिन्दी तथा डोगरी का तुलनात्मक भाषायी अध्ययन' विषय पर तथा प्रो० चम्पा शर्मा डोगरी के अर्थ-विकास (Dogri Samentias) पर काम कर रहे हैं।

× × × × ×

भाषायी दृष्टि से ही दूसरा महत्वपूर्ण काम हुआ है डोगरी लोक साहित्य के अध्ययन और संरक्षण की दिशा में। इस समय तक इस महत्वपूर्ण लोक-वरासत को संग्रहींत करके प्रकाशित करने की दिशा में कल्चरल अकादमी ने सराहनीय काम किया है। अकादमी की ओर से इस समय तक डोगरी लोक कथाओं के सात भाम और डोगरी लोक-गीतों के नौ संकलन छप गए हैं इसके इलावा ६००० मुहावरों का एक मुहावरा-कोष तथा १५०० लोकोक्तियां (Proverbs) का एक संग्रह भी अकादमी ने ही प्रकाशित किया है। इसी सम्बन्ध में अकादमी का एक और अंग्रेजी प्रकाशन भी उल्लेखनीय है —

An Introduction to the Folk-literature and Pahari Art By Pro Lakshmi Narayan & Pt. Sansar Chand.

इस दिशा में काम का श्री गणेश डोगरी संस्था ने किया था। इस बारे में सस्था के कुछ प्रकाशन इस प्रकार हैं :

क) जागो डुग्गर (१९४९ ई०)
ख) इक हा राजा (डोगरी लोक कथाएं १९५६ ई0)
ग) खारे मिट्ठे अत्थरूं (डोगरी लोक गीत १९५८ ई०)
घ) नमीं चेतना के अंक (पहला अंक १९५३ ई०)

इस दिशा में कुछ फुटकर प्रयत्न भी हुए हैं। जैसे:—

क) विधमाता दे लेख (मा० बिशनदास दुबे, १९७० ई०, रामनगर
ख) मनै दा पाप (श्री शंकरदास समनोतरा, १९७०, दिल्ली
ग) पौंगर (सम्पादक—श्री अनन्तराम शास्त्री
और घ) Sunlight & Shadow Dr. Karan Singh

पहले तीन लोक-कथा संग्रह हैं, और चौथी किताब डोगरी लोक-गीतों का संग्रह है, जिसमें गीतों का मतलब हिन्दी और अंग्रेज़ी में दिया गया है और गीतों की स्वर लिपि (Notation) भी दी गई है। डोगरी लोक-वार्ता सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण सामग्री अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका शीराज़ा तथा सालाना प्रकाशन 'स्हाड़ा साहित्य' में भी छपी है।

इस क्षेत्र में जिन विद्वानों ने लिखित सामग्री प्रस्तुत की है उन में से कुछ ये हैं: प्रो० शक्ति शर्मा, श्री श्यामलाल शर्मा, श्री विश्वानाथ खजूरिया, प्रो० बाल कृष्ण, प्रो० बलदेव सिंह, श्री संसार चन्द, श्री तारा स्मैलपुरी, श्री विष्णु भारद्वाज, श्री नीलाम्बर देव, श्री राम लाल शर्मा और श्री विद्या रत्न खजूरिया आदि।

इस दिशा में स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका प्रो० जनक गुप्ता का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी और डोगरी लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन' उल्लेखनीय है।

प्रो० बलदेव सिंह इन दिनों डोगरी लोक गाथाओं का विवेचनात्मक अध्ययन—विषय पर शोध कर रहे हैं।

लोक-साहित्य की यह छपी हुई सामग्री डुग्गर के सांस्कृतक जीवन का अध्ययन करने के लिए तो अहम है ही, डोगरी के भाषा शास्त्रीय और भाषा विज्ञानी अध्ययन के लिए भी बड़ी कारामद है। खास तौर पर लोक गीत तथा लोक-गाथाओं की सामग्री जिनमें भाषा का रूप अपनी पुरानी परम्परा को बनाए रखने का रुझान लेकर चलता है।

डोगरी, जैसे मैंने पीछे कहा एक दम घोटने वाले 'हीन भाव (Inferiority Complex) की शिकार रही है इसलिए इसके विकास के लिए किए गए हर यत्न में इसका वह संकोच आड़े आता रहा है। इसका आत्म-विश्वास मजबूत करने के लिए पिछले दो दशकों में जगह जगह होने वाले डोगरी मुशायरों ने बड़ा अहम काम किया। लेकिन इस बारे में डोगरी रंग मंच की दाग-बेल डालने के लिए जो यत्न हुए उनकी अपनी एहमियत है।

१९४७ ई० से पहले डोगरी प्रदेश में जो नाटक-परम्परा चालू रही उसमें हिन्दी तथा उर्दू का ही एकछत्र राज्य था। जम्मू कालेज में पंजाबी नाटक भी खेले जाते थे। इस एकाधिकार (Monoply) को तोड़ते हुए

जम्मू में टिक्करी नाम के गांव में एक राजनीतिक कान्फ्रेंस के मौके पर 'बाव जित्तो दा बलिदान' नाम के एक पूरे डोगरी नाटक को पहली बार १९४८ ई. में खेला गया। उस कान्फ्रेंस में शहरी भी थे देहाती भी, डोगरी भाषी भी तथा दूसरे भी। नाटक बिना तैयारी के और देहाती लड़कों के जरिए प्रस्तुत किया गया था—लेकिन देखने वालों ने प्रदर्शन की सराहना की। यह नाटक डोगरी संस्था ने प्रस्तुत किया था।

एक झिझक टूट गई। एक बद्धमूल संकोच हिल गया। यह बड़ी क्रान्ती सूचक घटना थी। लेकिन डोगरी में नाटक कहां थे? डोगरी संस्था की ओर से ही, इस ज़रूरत को देखते हुए 'नमां ग्रां' और 'सरपच' नाम के दो नाटक प्रस्तुत किए गए। 'सरपंच' श्री दीनू भाई पन्त ने लिखा था और 'नमां ग्रां' तीन लेखकों की सांझी रचना थी।

ये दोनों नाटक जम्मू के आस पास ४० मील के घेरे में देहातों कस्बों में कई बार खेले गए। यह एक नया तजरुबा था। पोर्टेबल मामूली स्टेज नाटक में काम करने वाले कुल १०-१२ किरदार जो खद ही स्टेज लगा लेते थे, मेक-अप कर लेते थे और दूसरे सभी छोटे मोटे काम भी खुद करते थे।

संस्था ने एक नई परम्परा को जन्म दिया। बाद में कल्चरल अकादमी के सालाना ड्रामा मुकाबलों ने डोगरी नाटकों के लिए वातावरण तैयार करने में मदद की।

डोगरी संस्था के इलावा फ्रैंडज़ क्लब, और राम कला मन्दिर जैसी ड्रामा क्लबें भी सामने आईं जिन्होंने डोगरी ड्रामे स्टेज किए। इन में से फ्रैंड्ज़ क्लब ने आज तक छः-सात डोगरी ड्रामे स्टेज किए हैं। आजादी के इन पच्चीस सालों में डोगरी भाषा के जीवन में बेदारी की यह तीसरी अंगड़ाई है।

यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि डोगरी ड्रामे की एक मजबूत रिवायत कायम हो गई है। रिवायत तो हिन्दी-उर्दू ड्रामे की भी नहीं है लेकिन कई दूसरी क्लबें कभी कभार जहां हिन्दी-उर्दू के आजमूदा कामयाब नए ड्रामों का इन्तखाब करती हैं— वहां अब डोगरी ड्रामों को स्टेज करने का रुझान भी बन गया है। रामनगर जैसे कस्बे में डोगरी ड्रामे के लिए ज्यादा साजगार माहौल, वहां की—बन्दरालता साहित्य मंडल नाम की डोगरी अदबी अंजुमन के यत्नों से बना है।

नरेन्द्र खजूरिया ने अपनी अदबी जिन्दगी रामनगर के ही एक स्कूल में अध्यापक के तौर पर काम करते हुए शुरू की थी। उसी ने वहां डोगरी ड्रामे खेलने की दागवेल डाली थी। बच्चों के लिए उसने छोटे नाटक लिख कर अपने स्कूल में खेले। वे मकबूल हुए। दूसरे स्कूलों में खेले गए। कुछ अध्यापकों में यह शौक जागा। उन्होंने आज तक वहां, नमां ग्रां, सरपंच, नरेन्द्र खजूरिया का ढौंदियां कन्धां, सुन्ना ते स्वारथ (श्री शम्भु मित्रा के कांचन मृग का डोगरी अनुवाद—अनुवाद श्री जितेन्द्र शर्मा) जैसे नाटक स्टेज किए हैं।

डोगरी नाटकों की इसी मांग को देखते हुए दूसरी भाषाओं से कुछ नाटकों के तर्जमे भी दिए गये। जैसे—

१ श्री मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' का अनुवाद—'मल्लिका'
जितेन्द्र तथा चंचल शर्मा

२ श्री धर्मवीर भारती के 'अन्धा युग' का अनुवाद—'अन्ना युग'
रामनाथ शास्त्री

३ श्री शम्भुमित्र के कांचन मृग का अनुवाद—'सुन्ना ते स्वारथ'
जितेन्द्र शर्मा

४-५ रवीन्द्र ठाकुर के 'डाकघर' 'मालिनी' और 'विसर्जन' नाटकों के अनुवाद
रामनाथ शास्त्री

६ नरेन्द्र खजूरिया के हिन्दी नाटक रास्ता कांटे और हाथ का अनुवाद 'न्हेरे रस्ते चानन होए'—
प्रो. कुलदीप जन्द्राही

७ भास के संस्कृत नाटक प्रतिमा का अनुवाद—
दीनू भाई पन्त

८ शूद्रक के संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम्' का अनुवाद—
रामनाथ शास्त्री

जो मौलिक डोगरी नाटक इस समय तक छप चुके हैं—वे ये हैं—

(१) नमां ग्रां। (२) सरपंच (दीनू भाई पन्त)। (३) देवका जन्म (डी. सी. प्रशांत)। (४) पंच परमेसर (पूर्ण सिंह)। (५) धारें दे अत्थरूं (वेद राही)। (६) देहरी (राम कुमार अबरोल)। (७) जनौर (प्रो. मदन मोहन)। (८) राजा मंडलीक (नरसिंह देव जमवाल)।

पिछले दिनों भी कविरत्न के निर्देशन में संस्कृत के दो बहुत पुराने (सातवीं सदी के) नाटकों भगवदज्जुकीयम् और 'मत्त विलास' का जम्मू में बड़े सफल प्रदर्शन हुआ। भगवदज्जुकीयम् दो बार स्टेज हुआ। ये नाटक अभी छपे नहीं। ऐसे और भी पांच-दस नाटक हैं जो अभी छपे नहीं।

पचास-साठ के लगभग एकांकी (one-act plays) भी डोगरी में छप गए हैं। रेडियो पर प्रसारित होने वाले रेडियो नाटकों की संख्या अधिक है। छपे हुए एकांकियों में कुछ रेडियो एकांकी भी हैं।

डोगरी भाषा के विकास के लिये ये सभी यत्न बड़े महत्वपूर्ण हैं लेकिन यह महज अभी शुरुआत ही है। डोगरी जबान की ग्रामर अभी लिखी जानी है, डोगरी शब्दकोश का काम अभी बाकी है। डोगरी लोक-साहित्य को इकट्ठा करके छापने के साथ-साथ उसके मुख्तलिफ पहलुओं के मुताले का काम अभी किया जाना बाकी है।

और सब से बड़ा काम है डोगरी को स्कूलों-कालेजों में रायज किया जाना। आज तक यह काम नहीं हो पाया—यह भी बड़ी नदामत की बात है।

कश्मीर घाटी में हिन्दी के पच्चीस वर्ष

चमन लाल सपरू

※

जम्मू-कश्मीर राज्य में कश्मीर घाटी की एक विशेष स्थिति है। यह भू ण्ड बिल्कुल एक अहिन्दी इलाका है। चारों ओर पर्वत मालाओं से घिरे हुए इस प्रदेश की अपनी एक विशेषता है। कश्मीरी यहां की मातृ भाषा है लेकिन देश की ही नहीं संसार की कई प्रमुख भाषाओं के साहित्य को इस घाटी की खास देन रही है। संस्कृत और उर्दू साहित्य से अगर कश्मीरी लेखकों की रचनाओं को निकाल दिया जाये तो इन दो भाषाओं के साहित्य में क्या रहता है? इसी प्रकार फारसी जैसी विदेशी भाषा के साहित्य को मालामाल करने में कश्मीरी लेखकों का प्रशंसनीय योगदान रहा है।

इधर सम्पर्क भाषा के नाते कश्मीर में हिन्दी का भी कुछ हद तक सन्तोषजनक विकास हुआ है, यद्यपि मैं समझता हूं कि हिन्दी भाषा और साहित्य के पनपने की यहां जो गुंजाईश थी उतनी प्रगति इसकी नहीं हुई है।

हिन्दी भाषा का समझना अथवा बोलना यहां के निवासियों के लिए उतना कठिन नहीं जितना और किसी अहिन्दी प्रान्त में है। कश्मीरी और हिन्दी भाषा में बहुत बड़ी शब्दावली मिलती जुलती है। यदि मोटे तौर पर देवनागरी लिपि में उर्दू भाषा का सर्वत्र-व्यवहार किया जाये, जैसा कि कुछ हद तक स्कूलों में चल रहा है तो यह समस्या सुलझ जायेगी। यहां हर साल देश के कोने-कोने से पर्यटक हजारों की संख्या में घूमने के लिए आते हैं

इसलिए उनके साथ आदान-प्रदान में यहां मांझी, फलवाले, तांगे और टैक्सी वाले, कारीगर, होटल वाले और दूसरे लोग काम चलाऊ हिन्दी का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार से यहां के फेरी वाले और दूसरे व्यापारी तथा मजदूर जाड़ों में उत्तरी भारत के विभिन्न इलाकों में अपने काम काज के सिलसिले में व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग करते हैं और स्वयंमेव हिन्दी से परिचित हो जाते हैं। हिन्दी की फिल्मों और विविध-भारती के प्रोग्रामों ने भी सर्व-साधारण में हिन्दी के प्रति रुचि उत्पन्न करते हुए उन्हें हिन्दी के शब्द भण्डार से परिचित कराया है।

कश्मीर की राजभाषा उर्दू और मातृ-भाषा कश्मीरी होने के बावजूद स्कूलों से लेकर परास्नातक स्तर तक हिन्दी पढ़ाने का यहां प्रबन्ध है। भारी सख्या में विद्यार्थी आरम्भ से हिन्दी को एक विषय के रूप में पढ़ते हैं; यद्यपि यह बात भी सही है कि अधिकांश स्कूलों में हिन्दी अध्यापकों का अभाव है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की एक योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के खर्चे पर प्रत्येक स्कूल में एक-एक हिन्दी अध्यापक नियुक्त हो सकता है। इस ओर शिक्षा-विभाग को तुरन्त ध्यान देना चाहिए।

१६५६ में जम्मू-कश्मीर राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई। इसके तत्त्वावधान में अब तक २६,६६४ हज़ार परीक्षार्थी हिन्दी की प्रारम्भिक परीक्षाओं में सम्मिलित हो चुके हैं।

संस्थायें—

१९४७ से लेकर आज तक कश्मीर प्रदेश में जिन संस्थाओं ने हिन्दी के विकास के लिए काम किया उन में कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, भारतीय हिन्दी परिषद, हिन्दी संसद, हिन्दी संस्थान, अभिनव लेखक मण्डल, आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन में प्रचार के क्षेत्र में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति और साहित्य-सृजन के क्षेत्र में कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का खास स्थान रहा है।

पत्र-पत्रिकायें—

यद्यपि इस समय स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कालिजों और कुछ प्रमुख स्कूलों के द्वारा ही कभी कभार हिन्दी की पत्रिकायें या पत्रिकाओं के हिन्दी खण्ड प्रकाशित होते हैं किन्तु पिछले पच्चीस सालों में यहां से कई स्तरीय

हिन्दी पत्रिकायें भी प्रकाशित होती रही हैं। इनके नाम हैं 'कश्यप', 'प्रकाश' 'योजना' आदि। कुछ वर्षों तक चलने के बाद यह पत्रिकायें बन्द हुईं। इस समय हिन्दी "शीराज़ा" जो जम्मू से प्रकाशित होता है कुछ हद तक इस कमी को पूरा करता है।

हिन्दी में शोध कार्य—

कश्मीर विश्व-विद्यालय के हिन्दी विभाग ने शोध के क्षेत्र में बड़ा उल्लेखनीय काम किया है। कश्मीर विश्वविद्यालय के सब से पहले स्वीकृत शोध-प्रबन्ध हिन्दी के ही हैं—डा. मोहनी कौल का "लल्लेश्वरी और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन" और डा. मुहम्मद अयूब खान 'प्रेमी' का "निराला के काव्य में दार्शनिकता"। अब तक यहां जो शोध प्रबन्ध लिखे गये हैं उन में उन शोध-प्रबन्धों का विशेष स्थान है जिन का विषय कश्मीरी और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन है। कश्मीर के बाहर आगरा, कुरुक्षेत्र आदि में भी कश्मीरी विषयों पर शोध-कार्य हुआ है। इन में लल्लेश्वरी, महजूर, आज़ाद, कश्मीरी लोक गीत, कश्मीरी मुहावरे और कहावतें, कश्मीरी संत काव्य, कश्मीरी सूफी काव्य, कश्मीरी राम काव्य आदि पर बड़ा महत्वपूर्ण काम हुआ है और इसी प्रकार कई एक महत्वपूर्ण विषयों पर काम हो रहा है। इन में स्नातकोतर हिन्दी विभाग के अध्यापक श्री त्रिलोकी नाथ गंजू का शोध प्रबन्ध "कश्मीरी भाषा का उद्‌गम और विकास" तथा श्री शशि शेखर तोषखानी का "बाणासुर कथा" कश्मीरी भाषा के गहन अध्ययन सम्बन्धी उल्लेखनीय कार्य हैं। श्री शशि शेखर का कार्य लगभग सम्पूर्ण हो चुका है।

सृजनात्मक साहित्य—

पिछले पच्चीस वर्षों में यहां कई हिन्दी लेखक (कवि, नाटककार, कहानी लेखक और निबन्ध लेखक) पनपे। इन में से बहुतों को हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई और प्रो. श्री हरिकृष्ण कौल तथा डा. जवाहर लाल हंडू को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा और सर्व श्री प्रेमनाथ दर, डा. मुहम्मद अयूब खान, चमन सपरू, मोती लाल क्यमू, प्रो. रतन लाल शान्त को ज. क. कल्चरल अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जिन कवियों ने हिन्दी जगत में अपना स्थान बनाया है वे हैं—सर्वश्री स्व. दुर्गा प्रसाद काचरू, दीना नाथ नादिम, गोपी नाथ कौशिक, पृथ्वी नाथ पुष्प, शशि शेखर तोषखानी, मोहन निराश,

पृथ्वी नाथ 'मधुप', राजेन्द्र मोहन कौशिक, त्रिलोकी नाथ वैष्णवी, मोती ला 'चातक', जानकी नाथ कौल 'कमल', प्रेम नाथ प्रेमी, शान्ति वीर कौल 'नवयुग' आदि। इस के अतिरिक्त बीसियों ऐसे कवि भी हैं जिन का ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्व है।

हिन्दी कहानी लेखकों में गत पच्चीस वर्षों में लगभग एक दर्जन कहानी कार उभरे हैं। उन में प्रो. हरिकृष्ण कौल का नाम अग्रमण्य है। इन हिन्दी कहानी संग्रह 'इस हमाम में' को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने पुरस्कृ भी किया है। कहानीकारों में सर्वश्री प्रेमनाथ दर, सत्यवती मल्लिक, निर्म कुसुम, घनश्याम सेठी, डा. जवाहर लाल हंडू, जवाहर लाल कौल, मनोह भट्ट आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। श्री जवाहर कौल, जो "दिनमान" दिल्ली के उप-सम्पादक हैं, और मनोहर भट्ट ने लद्दाखी जन-जीवन सम्बन्धित बड़ी प्यारी कहानियां लिखी हैं।

हिन्दी में नाटक बहुत कम लिखे गये हैं। इस दिशा में विशे उल्लेखनीय नाम श्री मोती लाल क्यमू का ही है। उन्होंने कई हिन्दी नाट का सफल अभिनय भी कराया है। "अभिनव-भारती" के तत्वावधान "काजी जी" का सफल प्रदर्शन हुआ है। आप का मौलिक नाटक संग्र "तीन असंगत एकांकी" पुरस्कृत भी हुआ है।

हिन्दी जगत को कश्मीरी भाषा, संस्कृति और साहित्य से परिचि कराने के लिये यहां जिन लेखकों ने लेखनी उठाई है, उन के नाम हैं :- सर्वश्री प्रो. पुष्प, डा. बलजिनाथ पण्डित, प्रो काशीनाथ दर, चमन लाल सपरू, डा. शिबन कृष्णा रैणा, डा. जवाहर लाल हंडू, मोहन कृष्ण दर नन्दलाल चत्ता, ओंकार काचरू, बद्री नाथ कल्ला, डा. ओंकार कौल आदि डा. बलजिनाथ पण्डित के 'कश्मीर शैव दर्शन' के बारे में ज्ञान-वर्धक लेख हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। चमन लाल सपरू के कश्मीरी संस्कृति और साहित्य के बारे में निबन्धों के मौलिक संग्रह 'सन्तूर के स्वर' को जम्मू कश्मीर राज्य कल्चरल अकादमी ने पुरस्कृत भी किया है। डा. शिबन कृष्ण रैणा ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से "कश्मीरी भाषा और साहित्य" का इतिहास नाम से इसी वर्ष अपने ढंग की पहली पुस्तक प्रकाशित की है। डा. जवाहर लाल हंडू की कश्मीरी लोक-गीतों पर आधारित एक उत्तम कृति अभी-अभी प्रकाशित हुई है। इस

पुस्तक को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा पुरस्कृत किया गया है।

कश्मीरी भाषा भाषी लेखकों के उपन्यास नगण्य ही हैं। इस दिशा में श्रीमती क्षेमलता वखलू और श्री अवतार कृष्ण कौल ने कुछ काम किया है। श्रीमती क्षेमलता वखलू के उपन्यास 'झील और कमल' और 'कश्मीर की बेटी' हैं। श्री अवतार कृष्ण कौल ने 'सरहद और प्यार' नाम से एक छोटा सा उपन्यास लिखा है। श्रीमती वखलू को कल्चरल अकादमी ने पुरस्कृत भी किया है।

अन्त में मैं उन साहित्यकारों का उल्लेख करना चाहूंगा जिनकी मातृ-भाषा कश्मीरी नहीं लेकिन हिन्दी के माध्यम से कश्मीर में रहकर उनके द्वारा कश्मीरी साहित्य के प्रचार, प्रसार और विकास में सहयोग मिल रहा है। उन में कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० रमेश कुमार शर्मा, उक्त विभाग के ही डा० मुहम्मद अयूब खां, इस्लामिया कालिज श्रीनगर के हिन्दी प्राध्यापक डा० निज़ामुद्दीन आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

कश्मीरी साहित्य की उत्तमोत्तम कृतियों का अनुवाद हिन्दी में करने का क्रम भी कुछ समय से चल पड़ा है। कश्मीरी भाषा की आद्य कवयित्री लल्लेश्वरी के 'वाखों' (पद्यों) का अनुवाद सर्व श्री शशिशेखर तोषखानी, गोपीनाथ कौशिक और शम्भुनाथ भट्ट हलीम ने किया है।

यह बात उल्लेखनीय है कि कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य, यहां के प्राचीन गौरव, सांस्कृतिक परम्परा और राजनैतिक महत्त्व से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने हिन्दी में सुन्दर रचनायें रच डाली हैं। ऐसे ६० प्रतिनिधि कवियों की कविताओं का संग्रह इन पंक्तियों के लेखक ने किया है।

कश्मीर के प्रमुख कहानीकार साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता पद्मश्री अख्तर महीउद्दीन के कथा-संग्रह 'सत-संगर' का साहित्य अकादमी के लिए श्री शशिशेखर तोषखानी ने हिन्दी अनुवाद किया है। भारतीय ज्ञानपीठ के लिए कश्मीरी की प्रतिनिधि रचनाओं का अनुवाद और सम्पादन तथा लखनऊ की एक साहित्य-संस्था के लिए प्रकाश भट्टीय कश्मीरी रामायण का सम्पादन एवं अनुवाद डा० शिबन कृष्ण रैणा ने किया है।

· मेरा पूर्ण विश्वास है यदि घाटी के कश्मीरी भाषी हिन्दी लेखकों को उचित प्रोत्साहन एव संरक्षण प्राप्त हो तो निःसन्देह उनकी लेखनी मां-भारती के साहित्य भण्डार की वृद्धि करने में सर्वथा समर्थ होगी।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य की मुख्य उपलब्धि--नयी कविता

मृदुला खन्ना

✻

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी साहित्य में काव्य की जिस धारा का विकास हुआ उसे 'नयी कविता' का नाम दिया गया है। वैसे तो नयी कविता के बीज सन् १६४३ में प्रकाशित 'तार सप्तक' में ही दृष्टिगोचर होने लगे थे, पर आलोचकों ने उसे प्रयोगवाद का नाम दिया। निश्चित रूप से 'नयी कविता' 'दूसरा तार सप्तक' १६५१ के बाद की कविता मानी जाती हैं।

नयी कविता प्राचीन कविता से बिल्कुल भिन्न है। उस में छायावादी कवि के 'स्वप्निल गीले गान' हैं और न प्रगतिवादियों का 'द्वन्द्वातक मार्क्सवाद' नयी कविता में सामयिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। नये कवि ने जो कुछ देखा, सुना और भोगा उसे लेखनी में उतार लिया।

स्वतन्त्रता से पूर्व सारे देश का एक ही ध्येय था--दासता से मुक्ति और स्वतन्त्रता की प्राप्ति। परन्तु स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषमताओं के कारण व्यक्ति के अन्दर असन्तोष और निराशा ने स्थान बना लिया। बे-रोजगारी जैसी समस्या ने उसे टूटन, बिखराव और घुटन के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया। नये कवि ने मानव के अन्तर की इस पीड़ा को सुना और उसे स्वर दिये। भारती जी की निम्नांकित पंक्तियों में आज के मानव की निरीहता और अनिश्चितता देखी जा सकती है :—

बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत,

डूबे हुए चांद, रीते हुए पात्र,
बीते हुए क्षण-सा—
मेरा यह जिस्म। (भारती; कनुप्रिया पृ. ६१)

अज्ञेय ने तो "मैं ही हूं वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता" लिख कर मानव की लघुता और दीनता को और भी मार्मिक बना दिया है। आज के व्यक्ति की गहन वेदना जगदीश गुप्त ने अनुभव की है—

यों मुझ को मत देख,
नीर भरी आंखों में—एक लहर टूटती,
दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती।[1]

वेदना का यह अथाह सागर व्यक्ति को दिन रात कचोटता रहता है जिस के कारण उसे आज का जीवन निरर्थक, खोखला और बेमानी लगने लगा है। ऐसी स्थिति में उसे अपने अस्तित्व के बने रहने की भी सम्भावना कहीं दिखाई नहीं देती—

मैं हूं नदी तल की रेत,
अर्पित हूं,
लेकिन किसी भी क्षण पावों तले से,
बह जाऊंगा।[2]

आज व्यक्ति जीवन को सच्चे अर्थों में जी नहीं रहा है वह केवल घिसट रहा है। यह भारती जी ने अनुभव किया है—

मैं चली जा रही हूं ऐसे,
जैसे लहरों पर विवश लाश बहती जाये।[3]

इस प्रकार की व्यथा निराशा नयी कविता में बहुत मिलती है पर नया कवि समस्त परिस्थितियों से भी जूझने का साहस रखता है। नयी कविता की यह विशेषता रही है कि उस में निराशा और वेदना के साथ ही साथ आशा और विश्वास के चित्र भी मिलते हैं। नया कवि घुटन और कुण्ठा से निकल कर आशामय भविष्य की ओर भी सतत प्रयासशील रहा है।

---

1. जगदीश गुप्त, नाव के पांव, पृष्ठ 78
2. धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृष्ठ 123
3. धर्मवीर भारती—ठंडा लोहा, पृष्ठ 44

अज्ञेय ने तो यहां तक कह दिया है कि 'आस्था न कांपे तो मिट्टी का मानव भी देवता बन जाता है। यही कारण है कि नये कवियों में निराशा के साथ-साथ आशामय भविष्य के भी संकेत विद्यमान हैं। सुश्री कीर्ति चौधरी के शब्दों में—

आखिर तो,
बड़े गाझिन गंध युक्त गुच्छों सा,
आयेगा भविष्य कभी,
करूंगी प्रतीक्षा अभी।[1]

नये कवि की यही धारणा उसे जटिलतम परिस्थितियों में भी जीवन्त रहने की प्रेरणा देती है। नये कवि ने सुन्दर-असुन्दर, आकर्षक, अनाकर्षक दोनों तरह के चित्र प्रस्तुत किए हैं। उस ने जीवन के कुत्सित पहलू को आदर्श में ढांप कर प्रस्तुत नहीं किया प्रत्युत उस का वास्तविक स्वरूप सामने रखा है। यही कारण है कि नयी कविता में दैनिक जीवन की परिचित वास्तविकताओं के यथार्थ चित्र मिलते हैं। एक मध्यवर्गीय परिवार की विपन्नता का चित्र निम्न पंक्तियों में पूरे तथ्य लेकर उतारा गया है—

मां ने कहा—पिता को देखो,
बोझ करो हलका उन का,
बहन सयानी पड़ी हुई है,
हंसी पड़ोसी उड़ाता है,
कैसे होगा ? तुम्हीं बताओ,
कानी कौड़ी पास नहीं।[2]

आज के जीवन की संकुलता का चित्र डा. देवराज की 'क्लर्क' कविता में देखा जा सकता है :—

सवेरे सांझ चाय पीता है,
डालडा खा खुशी जीता है।
कौन जाने शरीर में क्या है,
दिल है खाली, दिमाग रीता है।

---

1. कविताएं; कीर्ति चौधरी पृष्ठ 89
2. नयी कविता, पृ० 80

कलम से मन से काम करता है,
यों ही हर दिन को शाम करता है।

× × × × ×

हौंसले दिल के थके जाते हैं,
बाल जल्दी ही पके जाते हैं,
वोट देता है, बहस करता है,
जीस्त के दिन खिसके जाते हैं।[1]

इस प्रकार के यथार्थ चित्र प्रभाकर माचवे, राम विलास शर्मा, अजित कुमार, गजाननमाधवमुक्तिबोध, दुष्यंत कुमार, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि कवियों ने भी प्रस्तुत किए हैं।

नयी कविता का आयाम बहुत विस्तृत है। आज के कवि ने छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु को वर्ण्य विषय के रूप में प्रयुक्त किया है। सामान्य घरेलु वस्तुओं से लेकर फैक्टरी और मिलों के कल-पुर्जे तक नयी कविता के विषय बने हैं। चाय की प्याली, चूड़ी का टुकड़ा, प्लेटफार्म, हैंडबैग, लिपस्टिक, अस्पताल, नर्स, दाल, नौन, तेल, लकड़ी सब को विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया है। कहीं-कहीं तो विषय की व्यापकता इतनी अधिक बढ़ गई है कि वहां कविता अर्थ हीन और बेमानी भी लगने लगती है, जैसे—

व्यक्ति की सीमा,
मोहन्जोदारो की यादगार बन जाएगी,
पिचके सिक्के,
टूटी चूड़ी के टुकड़े,
सड़े फ्रेंच लेदर,
भग्न पियानों,
गिरे बाथ-रूम।[2]

इस प्रकार की रचनाएं कूड़े करकट के ढेर सी बन कर साहित्य में प्रवेश पाने की अधिकारी बन रही हैं। इन सब से आज के कवि को परहेज करना चाहिए।

---

1. नयी कविता (अंक 1) स० डा० जगदीश गुप्त पृ० 32-33
2. धर्मवीर भारती—ठंडा लोहा पृ० 3

आज की वैज्ञानिक विचारधारा के फलस्वरूप नयी कविता में नास्तिक की प्रवृत्ति भी उभर रही है । आज धर्म, ईश्वर और नियति पर से मा का विश्वास हटता जा रहा है । बौद्धिकता का प्राधान्य भावनात्मक अनुभूति को उभरने नहीं दे रहा । तर्क एक अमोघ अस्त्र बन चुका है जिस के सा प्राचीन धार्मिक और नैतिक मान्यताएं ठहर नहीं पा रहीं । परिणामस्व स्वर्ग, नरक, ईश्वर, धर्म सभी को झुठलाया जा रहा है । नये कवि ने वही राग अलापा है –

अगर सच पूछो मेरी प्रान,
व्यर्थ है स्वर्ग, नरक अनुमान ।[1]

'तीसरे सप्तक' में तो इस प्रकार की कविताओं का भी संग्रह किया ग है जहां ईश्वरीय और दैवी शक्तियों को नितान्त तुच्छ प्रमाणित कि गया है—

हम ईश्वर हैं आटोमैटिक,
पोर पोर में घुस अदृश्य हो,
स्थूल जगत् चालित करते हैं;
विह्वल भक्त विकार रहित हम,
बिना कान सुनते हैं, हा—हा,
बिना पांव चलते हैं; देखो,
बिना हाथ उत्पादन,
हा—हा—हा
हा—हा—हा—हा—हा ।[2]

इस प्रकार की नास्तिक प्रवृत्ति के कारण नया कवि नैतिक बन्धनों बिल्कुल अवहेलना कर रहा है । परिणामस्वरूप नयी कविता में ऐन्द्रिक मांसलता और वासना के बड़े कुत्सित चित्र भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं । न कवि लौकिक और क्षणिक सुख को ही अपना ध्येय मान बैठा है जिस के का पाठक कविता में अलौकिक रस और आनंद का आस्वादन नहीं कर पा रहा ।

नये कवि ने जीवन के कटु यथार्थ पर तीव्रता से प्रहार करने के लि व्यंग्य का सहारा भी लिया है । नए कवि ने वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थि

---

1. धर्मवीर भारती—ठंडा लोहा पृ० 3
2. तीसरा सप्तक, पृ० 95

राजनैतिक आदि विषमताओं को स्पष्ट करने के लिए अनेक व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं। आज के मानव का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'पोस्टर और आदमी' कविता लिखी है—

लेकिन मैं देखता हूं,
कि आज के जमाने में,
आदमी से ज्यादा लोग,
पोस्टरों को पहचानते हैं,
वे आदमी से बड़े सत्य हैं।[1]

नयी कविता का व्यंग्य बडा सशक्त है कारण यही कि उस में व्यंग्य मनोरंजन और विनोद का सहारा लेकर नहीं अपितु व्यक्ति, जीवन तथा राजनीति की युगीन प्रवृत्तियों का सटीक बोध कराने के लिए प्रयुक्त किया गया है। आज देशों में जो शान्ति स्थापना के बहाने से युद्ध की तैयारी जारी है उसी पर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का व्यंग्य द्रष्टव्य है—

क्या कमाल है मेरे दोस्त,
काश, कि तुमने इन सांपों के शरीर को,
तितलियों के परों से और मढ़ दिया होता,
फिर तुम्हारी यह शान्ति,
असली शान्ति सी लगने लगती,
क्या फौजी वर्दियों पर,
बुद्ध भिक्षुओं का गैरिक वसन,
नहीं ओढ़ा जा सकता था ?[2]

राजनीतिक व्यंग्य की दृष्टि से नागार्जुन के व्यंगों में बड़ा तीखापन है—

छोटे-छोटे बाल छटे हैं, चिकनी—मोटी गर्दन,
सिर पर हैट, सिगार का धुआं छूट रहा है छन-छन,
बूट पैंट मानिला शर्ट से ढका हुआ सारा तन,
उतरे हैं देवता स्वर्ग से धरती पर अफसर बन,
यही चलाते पटना-दिल्ली का हकूमती इन्जन,
पहले के आई. सी. एस. ठहरे, हो आए लन्दन,

---

1. काठ की घंटियां—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 182-383
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पीस पैगोडा।

पहली को पाते हैं साहब तीन हजारी वेतन,
मुन्सिफ बना दामाद, भतीजे ने पाया प्रोमोशन,
बेटे ने पकड़ा दामोदर-वैली कार्पोरेशन ।[1]

आज का कवि परम्परागत पौराणिक आदर्शों पर भी व्यंग्यात्मक चोट का
में नहीं चूका । बहुत से नए कवियों ने हमारी प्राचीन मान्यताओं औ
धारणाओं पर भी तीखे व्यग्य किए हैं ।

नयी कविता वस्तुपक्ष के साथ-साथ शिल्पपक्ष में भी नवीनता लिए हुए है
आज के कवि के लिए काव्य शास्त्र के मापदण्ड अर्थहीन हो गए हैं
कविता में न छंद रहे हैं न बंध, न लय और न तान । कविता पद्यात्म
कम और गद्यात्मक अधिक होती जा रही है । उदाहरण के लिए
कविताओं की पंक्तियां गद्य रूप में रखी जा रही हैं—

तपती जिन्दगी की उदास दोपहरी में तुम खस की खुशबू की तर
कमरे में आईं ।

और उधर की चौखटिया नाली के पास रामू धोबी की लड़की
बिटिया नहा रही है ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से नयी कविता भरी पड़ी है । भा
को भी नये कवि ने अपने ही ढंग से लिखा है । परम्परागत बिम्बों औ
प्रतीकों का मोह छोड़ कर नए कवि ने नवीन उपमान ग्रहण किए हैं । आ
की कविता में कपोत, कोकिल, चातक, सिंह, गज, मृग आदि लुप्त हो चुके
उन का स्थान रोजमर्रा के जीवन की वस्तुओं ने ग्रहण कर लिया है । क्ल
जीवन की चिंताओं और अभावों का बिम्ब कवि ने यूं उतारा है—

घंटियां बज रही हैं रिक्शों की
बीसियों साईकलों की पातें,
कैरियर टोकरी या हैंडिल में,
कुछ में हैं फाईलें हर क्षण भूखी,
जो न कभी खत्म हुई दफ्तर में,

---

1. काव्य धारा (बड़ा साहब) नागार्जुन पृ० 166

है जरा कम ही टोकरी ऐसी,
जिन में आते हैं मौसमी फल फूल ।[1]

निष्कर्ष यह कि नयी कविता अब दिन प्रतिदिन नयेपन की ओर अग्रसर हो रही है। वह अब 'नयी कविता' से 'ताजी कविता', 'अ-कविता' और न जाने क्या-क्या कहलाने लगी है। स्वतन्त्रता के बाद व्यक्ति और समाज की संकुलता को नयी कविता में विभिन्न कोणों से आंका गया है। वह जन-मानस में नये जीवन सत्यों के प्रति अधिक ईमानदारी बरत रही है।

इतना सब होते हुए भी हिन्दी साहित्य का पाठक आज की कविता में कुछ वैसा ढूंढ नहीं पा रहा जो उसे पुरानी कविता में मिलता है। भक्तिकाल के साहित्य में पाठक तन्मय हो कर जितना डूब सकता था उतना आज की कविता में नहीं। वैसा अलौकिक आनन्द उसे अब मिल नहीं रहा। मेरे विचार में इस का एक कारण यह भी हो सकता है कि 'नयी कविता' में 'अतियथार्थ वाद' उस सीमा तक पहुंच चुका है जहां साहित्य का 'सुन्दरम्' और 'शिवम्' अंश लुप्त हो गया है। कोरा यथार्थ कहीं-कहीं तो इतना वीभत्स और कुत्सित हो गया है कि पाठक उन पंक्तियों को कविता मानने से ही इन्कार कर रहा है। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि नये कवि ने प्रत्येक वस्तु को विषय रूप में ग्रहण करके काव्य का रस खो दिया है जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति कवि नहीं हो सकता उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु विषय नहीं हो सकती। अपवाद तो रहने ही चाहिएं।

नयी कविता में सब से अधिक खलने वाली बात यह है कि पिछले २५ वर्षों के सम्पूर्ण काव्य में आज तक कोई भी ऐसा कवि सामने नहीं आया जिस के नाम पर युग का नामकरण किया जा सके या जो युग प्रवर्त्तक कहलाये। तुलसी, सूर, केशव, भारतेन्दु, द्विवेदी, प्रसाद आदि सभी युग प्रवर्त्तक रहे हैं। सभी के नाम पर युग का दृष्टिकोण आंका जा सकता है पर नयी कविता में ऐसा कोई नहीं मिला। कुछ लोग 'अज्ञेय' का नाम अवश्य लेंगे। 'अज्ञेय' नयी कविता के संस्थापक अवश्य हैं परन्तु कवि रूप में युग प्रवर्त्तक नहीं। कविता से अधिक तो वह कथाकार रूप में ही लोकप्रिय हुए हैं। नयी कविता में तो किसी कवि की कोई भी ऐसी कृति नहीं मिलती जिस पर हिन्दी साहित्य रामचरितमानस, कामायनी तथा साकेत की भांति युगों तक गर्व कर सके।

---

1. गिरिजा कुमार 'माथुर' : धूप के धान।

छुट-पुट रूप में तो अगणित रचनाए मिल जाएंगी पर वह क्षणिकता लिए हुए हैं और शाश्वत मूल्यों से रहित हैं।

जो भी हो, यह तो कहना ही पड़ेगा कि इतने विरोधों और संघर्षों बावजूद भी नयी कविता जीवित है। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में उस का प्र निर्बन्ध रहा है और आशा है कि भविष्य में भी नया कवि नित्य नई रचन प्रस्तुत करता रहेगा। पर एक बात और भी विचारणीय है कि 'कविता' पिछले २० वर्षों में 'नयी कविता' थी वह आज भी 'नयी कविता' ही कह रही है अगले २५-३० वर्षों में जब काव्य क्षेत्र का रूप बदलेगा क्या तब 'नयी कविता' 'नयी' ही रहेगी ? अगर ऐसा ही है तो आगामी कवि का क्या नाम होगा ? इस का फैसला तो आने वाला समय ही कर सकेगा।

कांगड़ी लोक गीतों में सावन वर्णन

गौतम शर्मा व्यथित

⁕

लोक गीत जनमानसी प्रतिबिम्बों का गीतात्मक रूप हैं जिन में लोक मानस का प्रतिनिधित्व तथा लोक भावनाओं का ऋचात्मक रूप झलकता है। लोक गीतों में ऋतु गीतों का विशेष स्थान है। ऋतु अनुसार जहां प्रकृति का रूप बदलता है वहां मानवीय भावनायें भी अपना स्वरूप बदलती रहती हैं। ऋतु विशेष में भावनानुसार विशेष गीत गाये जाने की परम्परा आदि-कालीन है। ऐसे गीतों में ऋतु सम्बन्धी प्राकृतिक सौंदर्य के उल्लेख एवं उल्लास के साथ ऋतु के परिवेश में लोक भावनाओं का अनूठा चित्रण मिलता है। लोक गीतों के इस परम्परित रूप का प्रचार उत्तरी भारत के हिन्दी जनपदों में सर्वत्र मिलता है।

ऋतु गीतों में हमें दो प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं—प्रथम वे जिन का सम्बन्ध केवल ऋतु विशेष से होता है और दूसरे वे जो ऋतुओं में पड़ने वाले पर्व त्योहारों तथा जनपदीय उत्सवों से सम्बद्ध होते हैं। कांगड़ी लोक गीतों में ऋतु गीतों का सर्वेक्षण करने पर हमें उनके निम्न रूप उपलब्ध होते हैं—

(१) चेता गीत अर्थात् बसन्त तथा ढोलरू।

(२) सावनी अथवा पींघ (झूले)।

(३) शर्द गीत अर्थात् लोहड़ी (माघी) गीत।

(४) होली गीत तथा बारामासा, छमाहड़े व तिमाहड़े।

प्रस्तुत लेख में कांगड़ी ऋतु गीतों के संदर्भ में सावनी अथवा झूला गी
की विवेचना की जायेगी।

कांगड़ी में वर्षा- ऋतु सम्बन्धी गीतों को 'सौणी गीत' अथवा 'पीं
कहा जाता है। पींघें शब्द हिंडोल या झूलना का समानार्थक है। अ
भारतीय जनपदों में इसे 'कजली' कहा जाता है। लोक गीतों के इस प्रक
की परम्परा निर्विवाद है। कबीर बीजक में भी हिंडोला नाम के
संकलित हैं। तुलसी दास तथा अष्ट-छाप के प्रायः सभी कवि
ने इस लोकप्रिय शैली का उपयोग किया है। कांगड़ी लोक गीतों में स्थान
लोक-मानसी भावनाओं का बहुरगा चित्रण मिलता है। इस मास में वर्षा
उतर आने पर काली नीरद मालाओं का धवल गिरी से गलबहियां कर
मेघाच्छादित आकाश में कभी-कभी चन्द्रमा की आंख मिचौनी घाटियों के व
पर उगी हरी-हरी दूब व नुकीली घास जहां इस घाटी के रूप सौंदर्य
सृजनात्मक योग देते हैं वहां पहाड़ी झरने, कूल्हों के घुमावदार पानी
उत्पन्न अलौकिक संगीतमयी स्वर लहरियां, अल्हड़ ग्रामीण छोरियां बा
तथा गड़रियों की बांसुरी की तान इस ऋतु सौंदर्य में एक अनूठा संगीत
भरती है। पहाड़ियों के दामन में सीढ़ी-नुमा तथा जल भरे समतल खेतों
धान मींजती कृषक स्त्रियां, गांव की पगडंडी पर जाते हुये बेखबर यात्री
ध्यान अपनी ओर सहसा ही खींच लिया करती हैं।

उचिया कुआलिया में खड़ी,
सुण परदेसिया भाईया मेरेया।
अम्मा देया जाया,
मिजो बी पेइयां दा चा।
मिजो लेई जायां वे॥

पहाड़ी की चोटी पर खड़ी होकर एक नव-विवाहिता दूर से आते कि
युवक को अपना भाई समझ कर (सम्भावना में) सम्बोधित करती हुई कहती
कि दूर देस बसने वाले मेरे भाई, मेरी मां के जाये प्रिय भाई! सुनो—मु
मायके जाने का चाव है, मुझे भी साथ लेते जाना।

परन्तु गीत की अगली कड़ियों में हमें भाई के शब्दों में असमर्थता ए
सामाजिकता की गंध से ओत प्रोत ये भावमय शब्द सुनाई देते हैं—

लैरे म्हीने दियां नदियां जे भारी,
नी भैणे घरे रेहां ऐ।

अर्थात लैरे महीने (सावन मास में) अविरल-वर्षा बरसने से नदियों में पानी चढ़ आया है, अतः उनके पार मायके तक पहुंचना सम्भव नहीं। मेरी बहन! अभी तुम अपने घर ही रहो। परन्तु आन्तरिक व्यथा हठ करने से क्या कभी रुकती है। लोक विज्ञान, लोक-मानस से जनित अनेक उपायों का सुझाव करता अपनी असमर्थताओं को दूर करने की चेष्टा करता प्रतीत होता है। यही भाव इस गीत की अगली पंक्तियों में बहन के मुख से निकले बोलों में झलकता है—

> चनण रुख कटानियां ओ,
> वेड़ला पुआनियां ओ।
> नी परदेसिया भाईया, अम्मा देया जाया!
> मिंजो वी पैईयां दा चा,
> मिंजो लेई जायां वे ॥

भाई मैं चन्दन का वृक्ष कटवा कर नाव डलवाती हूं, मुझे मायके जाने का बड़ा चाव है अतः येन-केन उपायेन साथ लेते जाना।

भावना के तंतुओं में लोक नारी की ससुराल के यहां अनुभूत पीड़ाओं एव उपेक्षाओं का वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण इस से सरल और क्या हो सकता है, सहृदय व्यक्ति स्वयं अनुमान कर सकता है। ये पक्तियां यहां सावन का चित्रात्मक रूप प्रस्तुत करती हैं वहां लोक नारी के व्यथित हृदय का बिम्ब भी प्रस्तुत करती हैं।

कांगड़ी सावनी गीतों में संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार का चित्र-मय वर्णन बड़ी मार्मिकता एवं अधिकता से मिलता है। वास्तव में सत्य अर्थात् वास्तविक अनुभूतियां ही लोक गीतों का प्राण हैं, सत्य हैं, और सृजना का आधार हैं। इन में कल्पना अतिशयोक्ति एव अन्य कलात्मक अभिव्यक्ति अंश मात्र नहीं होती। जहां कहीं भी पाठक एवं श्रोता को ऐसी सम्भावनायें प्रतीत होती हैं, उन का स्वरूप पूर्णतया प्राकृतिक एवं स्वाभाविकता से परे नहीं होता। लोक हृदय गीत सृजना की अपेक्षा प्राकृतिक वातावरण में अनुभूत भावनाओं, अन्तर्पीडाओं तथा अभावों को वाणी मात्र देता है, परन्तु सम्पूर्ण लोक उस में अपनी भावनाओं, पीड़ा तथा अन्तर्वेदनाओं की अभिव्यक्ति पा कर उसे कण्ठ-हार बनाता पैतृक सम्पति स्वरूप रखता आया है।

सावन सचमुच वियोग को सान पर चढ़ा देता है। लोक-नारी प्रियतम

के अभाव में सावनी —स्रोते की भान्ति फूट पड़ती है—

सौवण-सौवण कही रही ओ प्रिया सौवण।
सौण गया परदेस,
कदी घरें औवण।
लिखी-लिखी चिट्ठियां मैं भेजां,
ओ पिया सौवणा !
तेरे भाईये दा लिया ब्याह
कि तुसां घरें औवणां।

हे परदेसी प्रियतम ! मैं तुम्हारे वियोग में सावन-सावन पुकार रही हूं। अब तो सावन भी चढ़ आया है, तुम कब घर आओगे। मैं तुम्हें पत्र पर पत्र डालती हूं, आप के भाई का विवाह जुड़ा दिया है; सारे कार्य पड़े हैं, तुम कब लौटोगे ? परन्तु निष्ठुर (अथवा विवश) प्रियतम के ये शब्द उसके वियोग को और बढ़ा देते हैं—

दमा दियां बोरियां में भेजां
कि नाजो माणियें।
अपणे देरे दा करयां ब्याह
कि स्हाड़ा औणा नी हुंदा।

अर्थात हे मेरी प्रिया ! मैं धन की बोरियां भेजता हूं तू बड़ी प्रसन्नता से अपने देवर का विवाह कर देना, मैं विवश हूं मेरा आना सम्भव नहीं। परन्तु लोक-नारी की सूझ यहीं तक ही बस नहीं करती वह गीत में उत्तरोत्तर बहन के विवाह; माता-पिता के रोग ग्रस्त होने का बहाना इत्यादि कई कुछ लिख भेजती है परन्तु पत्रोतर में उसे प्रियतम से विवशता के शब्द ही सुनने को मिलते हैं। अन्ततः वह यूं कहती है—

लिखी-लिखी चिट्ठियां मैं भेजां,
कि पिया सौवणा।
तेरिया नाजो दा मन्दड़ा हाल
कि तुसां घरें औवणा।

हे परदेसी प्रियतम ! तुम्हारी प्रतीक्षा में मेरी स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है विरह रोग से मेरा शरीर पिंजर मात्र रह गया है, अ

तो आप घर आ जाओ।

हत्थे दियां छुट्टिट गियां कलमां,
रोई-रोई सिज्जी गे रूमाल,
कि असां घरें औवणा।

अर्थात पत्नी की स्थिति उस से सहन न हो सकी, अन्ततः उस का निष्ठुर मन पराजय स्वीकार करने को बाधित हुआ। पत्र मिलते ही उसके हाथ से कलम छूट गई और प्रिया के वियोगात्मक रूप को सम्मुख पा कर अपने आंसू न रोक सका। आंखें पोंछते-पोंछते उसका रूमाल भी भीग गया।

इस सावनी गीत में लोक नारी के विरह—व्यथित हृदय का बिम्बात्मक वर्णन मिलता है जो कि सरल एवं संक्षिप्त होते हुए भी मार्मिकता का अछूता प्रभाव श्रोता एवं पाठक के मस्तिष्क पर सहज रूप से ही छोड़ जाता है। गीत की अन्तिम पंक्तियां हत्थे दियां छुटी गईयां कलमां, तथा रोई-रोई सिज्जी गै रूमाल, कितनी मार्मिक एवं बिम्बपूर्ण हैं। लोक हृदय की सहज तथा स्वाभाविक सृजना की व्याख्या सरल सम्भव नहीं। नारी के इस करुण-क्रन्दन एवं विरह वर्णन में केवल पति का अभाव ही नहीं अपितु मध्यवर्गीय समाज में पनपी सामन्ती परिपाटियों की धाराओं में मिलती लोक नारी की अनुभूतियों का भी कम महत्व नहीं। अतः वैज्ञानिक रूप से भी ऐसे गीतों की उपयोगिता उपेक्षणीय नहीं कही जा सकती। चित्रात्मकता भी ऐसे गीतों की मुख्य विशेषता है। निम्न गीतांश में सावन मास का चित्रण मिलता है—

सुणा सखियो ! सौवण आया जी,
इक सौवण आया, बूंदां वरस रहियां।
सुण ससु जी ! इक पुत्र तुहाड़ा जी,
ओ वी कंत गोरी दा
ओ वी परदेस गिआ॥

हे सखियो सुनो सावन चढ़ आया है, वर्ष में सावन एक ही बार तो आता है, इस सावन में ठंडी-ठंडी बूंदें बरस रही हैं।

हे सास सुनो ! तुम्हारा एक ही तो पुत्र है, जो मेरा प्रिय कंत (पति) है परन्तु वह भी आप ने इस ऋतु में परदेस भेजा है।

सुण नुहें जी, इक हो सारा जी,
ओह वी कंत गोरिदा,

ओह वी परदेस गिया,
ज्यूड़े धम्मी रखो ।

हे बहु सुनो ! मेरा एक ही पुत्र है, वह तुम्हारा ही कंत है, यह सत्य है कि वह परदेस गया है, परन्तु तुम अपने यौवन को वश में रखो ।

सुण ससु जी ! चिट्ठी में लिखी भेजां,
इक धी ऐ बगानड़ी जी,
ओ वी भरी ऐ जुआनिया जो,
तुसां घरें आई जाणा ॥

हे प्रिय सास ! मैंने उन्हें पत्र डाला है उस में मैंने लिखा है कि मैं यौवन से भरी, पराई पुत्री हूं, अतः तुम अवश्य घर आ जाना क्योंकि सावन भी यौवन पर है ठण्डी-ठण्डी बूंदें बरस रही हैं। परन्तु सास का हृदय बड़ा निष्ठुर है। वह अपने पुत्र को बुलवा भेजती, वह उसे यूं ही कह कर टालने का प्रयास करती है :—

सुण गोरिये जी, चन्द्रावली गूजरी जी,
ओहदे नैण रसीले जी,
जिन्नी ढोली मोही लिया जी,

बहु गोरी सुनो ! दूर देस में चन्द्रावली नाम की गुजरी है जिस के नयन बड़े रसीले हैं। उसी ने तेरा कन्त मोह लिया है। मैं क्या करू।

परन्तु वियोग में ऐसे शब्द किसे असह नहीं होते। लोक नारी पति पर एकाधिकार रखती है, वहु तुरंत यू बोलती सुनाई देती है :—

सुणा ससु जी ! मैं उस गुजरी मंगावां,
ओहदे नैण कढावां,
जिन्नी ढोहली मोही लिया ऐ।

हे सास सुनो ! मैं उस गुजरी को बुलवाऊंगी, उसके नैन कढवां दूंगी, जिसने मेरा कन्त मोह लिया है।

इस सावनी गीत में सास बहु सम्बन्धों का भी एक मुंह बोलता चित्र मिलता है। गीत की अन्तिम पंक्तियों के शब्द 'चन्द्रावली गुजरी' 'नैण रसीले' 'नैण कढावां' पूर्णतया बिम्बात्मक हैं जो प्रतीकात्मक रूप में इन्हीं सभी भावों को वाणी देते नहीं थकते।

कांगड़ी लोक गीतों में बारह मासा का अपना स्थान है। ऋतु चित्रण के परिवेश में विरह भावनाओं की अभिव्यक्ति इन गीतों का मुख्य विषय है। कांगड़ी में बारह मासा के अतिरिक्त 'छमाहड़े' और 'तिमाहड़े' अर्थात छः मासा तथा तीन मासा चित्रण सम्बन्धी गीत भी उपलब्ध होते हैं। कांगड़ी में सावन तथा भादों के लिए 'लैंरा महीना' तथा 'काला महीना' शब्दों का प्रयोग मिलता है। इन दोनों महीनों में लोकनारी अपने प्रियतम से बिछुड़ने से इन्कार करती है। निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :—

नौकरां मसाफरां जिन्हां पीड़े घोड़े।
तुसां चले परदेस असां जिगरे थोड़े,
लैंरै न जायो कन्ता बरखां दा जोर,
काले तां रातीं न्हेरियां ऐ।

घोड़े कस कर परदेस जाते प्रियतम ! हमारा हृदय बड़ा कमजोर है, निष्ठुर न बनो लैंरे महीने अर्थात सावन में परदेस नहीं जाते क्योंकि इस मास में वर्षा बड़े जोर से होती है, रास्ते टूट जाते हैं नदियां भर आती हैं। काले महीने (भादों) भी बाहिर नहीं जाते क्योंकि इस मास रातें अन्धेरी होती हैं। इस गीतांश में लोक कवि ने 'बरखां दा जोर तथा राती न्हेरियां' जोड़ कर दोनों महीनों को बिम्ब रूप से व्यक्त कर दिया है। लैंरे तथा काला शब्द भी पूर्णतया प्रतीकात्मक हैं। भावों की प्रेषणीयता प्रत्येक दृष्टि से सरल सम्भव है। पत्नी अपने प्रेम की बात न कह कर ऋतु का भयानक चित्र प्रस्तुत करती पति को घर ही पर रहने का आग्रह करती है। जिस में भाषा की व्यन्जकता स्पष्ट झलकती है।

सावन मास में गांव-गांव में, घर-घर पींहगें डाली जाती हैं। जोहड़ों के तीर विस्तृत वन-स्थलियों में वट-वृक्षों, आम-डालियों आदि से पींहगें डालकर बाल, युवा, बृद्ध, पुरुष-स्त्रियां उन में झुलारे भरना इस मास की आवश्यकता समझते हैं। लोक कथन है कि इस मास झूला अवश्य झूलना चाहिये। ऐसे गीतों का श्रवण तथा मनन इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि लोक स्वयं में कृष्ण स्वरूप की अनुभूति करता उन्हीं की लीलाओं को पुनः स्वीकृति देना परम धर्म समझता है। लोक का प्रत्येक युवक 'कृष्ण' तथा युवती 'राधा' का प्रतीक मानी जाती है। संस्कार गीत इस संदर्भ में विशेष महत्व रखते हैं।

निम्न छः मासे में सावन की प्रकृति एवं लोक प्रक्रियायें सरल शब्दों में व्यञ्जित हैं :—

चढ़िया महीना सौण,

उच्चे सिम्बले पींहगा पौण,
रली मिली सईयां झूटणां जाण,
कजला वाहण, कनें मटकान,
लगन प्यारियां ढोला,
लई चल अपणे नाल ।
ज्यूड़ा रैंहदा उदास वे ।।

सावण चढ़ आया है । ऊंचे सेंवल वृक्षों से पीहगें डाली गई हैं । सा सखियां-सहेलियां मिलजुल कर झूला झूलने जाती हैं । वे कजला डाले मटक हुई बड़ी प्यारी लगती हैं । हे प्रियतम मेरा जी बड़ा उदास होता है, अ मुझे भी साथ ले चलो । आप का विछोह सहन नहीं होता ।

प्रस्तुत गीतांश में भी सावन मास का वर्णन, उस के विशेष आकर्षण त लोक आस्थाओं का बिम्बात्मक रूप उपलब्ध होता है । सावन मास शब्द साथ 'ज्यूड़ा उदास' शब्द का प्रयोग लोक की काव्यात्मक सूझ का परिणाम है।

कांगड़ा लोक में सावन एक अन्य दृष्टि से भी विशेष महत्व रखता है इस मास में स्थानीय लोग देवी-देवताओं सम्बन्धी विभिन्न स्थानों पर मेले, प तथा लोक जातराओं का आयोजन करते हैं । शैव स्थानों की यात्रा शिव दर्श पूजन तथा शैव भाव सम्बन्धी जलाशयों, नदी-नालों में स्नान करना महात्म माना जाता है । बैजनाथ, महाकाल, चामुण्डा नदिकेश्वर, भागसूनाथ, घ महादेव, त्रिलोक नाथ, कलेसर महादेव, बीरभद्र आदि स्थानों का इस दिशा विशेष स्थान है । श्रावणी सोमवारों को हजारों की संख्या में नारि इन स्थानों की जातरायें करतीं, मनोतियां मनाती, सुहागमय सुख-प्रद भवि की मंगल कामना करती हैं ।

नाग पूजा का भी कांगड़ी लोक में विशेष महत्व है । इन के प्रति लोक में विभिन्न प्रकार की कथायें, आस्थायें तथा अन्य मत मतातरों का प्रचल मिलता है । नाग त्रिपल (रानीताल) नागणी भडवार, गुग्गा सलोह, गुग्ग करोट, शिवोदा थान (भरमाड़) आदि में इन के प्रतिष्ठित स्थान (थान) है इस के अतिरिक्त गांवों में प्रत्येक घर अथवा वंश ने पृथक रूप से इन स्थापना की होती है । नाग पूजा का विशेष महत्व इस दृष्टि से भी आं जाता है कि वर्षा ऋतु में सर्प-भय बढ़ जाता है । लोक की अपनी दैनि प्रक्रियाओं में सर्प-दंश संभावनाओं की आशका बनी रहती है अतः पूजा भाव देव प्रसन्न होते हैं । लोक इसी धारणा से इन की पूजा करता आया है ।

मेला गीत भी सावन मास का विशेष आकर्षण है, लोक ने ऐसे गीतों को झंझोटी नाम दिया है। ऐसे गीतों में प्रेम आदि भावों के किसी एक पक्ष को पुनरावृत्यात्मक रूप में आवृत्ति दी होती है। निम्न झंझोटी देखिये :—

फुलुके पकाणी में गिणी-गिणी,
ओ जानी गिणी-गिणी,
मेरे खाणे वाले लोभी दूर,
अक्खें खाणे वाले लोभी, खाई जांदे,
मजा पाई जांदे,
लाई जांदे डुगड़े तीर,
मेरे खाणे वाले लोभी दूर,

मैं गिन २ कर रोटियां पकाती हुं, परन्तु इन्हें खाने वाले तो बहुत दूर हैं। जो खाने वाले हैं वे खा ही जाते हैं मज़ा ले जाते हैं और साथ-साथ एक मीठा दर्द दे जाते हैं।

प्रस्तुत गीतांश में 'लोभी' तथा 'डुगड़े तीर' दोनों शब्द बिम्बात्मक हैं। इन पंक्तियों के श्रवण मात्र से विरह व्यथित लोक नारी का समूचा चित्र नयनों के सामने तिरने लगता है। निम्न झंझोटी में प्रेमिका का प्रेमी के साथ चलने का आग्रह है :—

हार सुने दियां लरजां जिन्दे,
गोरी रोई-रोई करदी अरजां जिन्दे,
सौगी चल जमेदारा।
सुन्नेहार स्यूने दियां कड़ियां जिन्दे,
असां हेठ बरोटुए खड़ियां जिन्दे,
छोहरी रोई-रोई करदी अरजां जिन्दे,
सौगी चल जमेदारा॥

हरी भरी घाटियों में ग्वालों, यात्रियों तथा कृषकों के सुरमयी सावनी गीत कितने मधुर; मोहक तथा कर्ण प्रिय होते हैं, विस्तृत व्याख्या की आकांक्षा रखते हैं। नदि नालों में गून्जता लम्बी डोर के सहारे धीरे-धीरे बहता ये सावन कितने हृदयों को संतृप्त रखता है। अज्ञात कितनी विरहणियां अपने चारों ओर जल की शीतलता पाने पर भी मन में वियोग की आग से सुलगती सावन बिताती हैं, ये गीत उन्हीं की वाणी हैं, उनकी देन हैं।

हिमाचल की सांस्कृतिक झलक —कुल्लूई लोकोक्तियां

एम० आर० ठाकुर

※

लोकोक्ति का साधारण अर्थ लोक-उक्ति है अर्थात ऐसी उक्ति या बात जो जन साधारण में बोली जाती हो। परन्तु जन-साधारण की हर बात लोकोक्ति नहीं कही जाती, वरन केवल वही उक्ति लोकोक्ति होती है, जिस ने विशेष परिस्थिति में जन-मानस पर गहरा प्रभाव डाला हो और फिर अपने चुटकीलेपन के कारण स्थायी रूप धारण करके प्रचलित हो गई हो। ऐसी उक्ति आकार में जितनी छोटी हो प्रभाव और अर्थ में उतनी ही विशाल होती है। रूप में संक्षिप्त परन्तु भाव में विस्तृत होना लोकोक्ति का लक्षण है।

कुल्लूई भाषा में लोकोक्ति को 'बख्यान' कहते हैं, जो शाब्दिक रूप में 'उपदेश' के अर्थ में प्रयुक्त होता है—"होरी बै बख्यान आपू बै गोष्टै" इस लोकोक्ति में शब्द बख्यान का अर्थ उपदेश जैसा ही है, और यह उर्दू कहावत 'दूसरों को नसीहत खुद मियां फजीहत" की पर्यायवाची है। इसी तरह एक दूसरी लोकोक्ति में कहा गया है "समानै जाना बख्याने नी जाना"। यहां बख्यान का अर्थ सुनी-सुनाई बात से है। कुल्लूई बख्यान संस्कृत शब्द "आख्यान" का अपभ्रंश रूप है, जिस का अर्थ "कहना" या उक्ति है तथा बख्यान का अर्थ हुआ विशेष उक्ति अर्थात् विख्यान।

लोकोक्तियों का मानव जीवन से गहरा सम्बन्ध है। समाज में प्रचलित लोकोक्ति उसमें रहने वाले मनुष्यों के जीवन के हर पहलु पर पूर्ण प्रकाश

डालती है। मानव की कुछेक समस्यायें समान रूप से घटित होती हैं। चाहे वे किसी समाज, देश, जाति या सभ्यता से सम्बन्धित हों कुछ परिस्थितियों में जीवन-साम्य हर जगह विद्यमान होता है। यही कारण है कि कुछ लोकोक्तियों का रूप हर समाज में समान होता है निस्सन्देह ये विभिन्न भाषाओं में प्रचलित हों। परन्तु लोकोक्तियों का मुख्य अंश हर समाज में उस की परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न होता है, और ये लोकोक्तियां वहां की सामाजिक परम्पराओं, ऐतिहासिक घटनाओं, भौगोलिक स्थितियों, दैनिक परिस्थितियों के अनुसार हुआ करती हैं। कुल्लू की लोकोक्तियों की पृष्ठभूमि में भी यही वातावरण प्रभावी है।

पहाड़ी अथवा कुल्लूई समाज में अतिथि सत्कार का तो विशेष महत्व है। परन्तु यदि उनकी मेहमान-नवाजी का सम्मान न हो तो उन से रहा नहीं जाता :—

खार खाई काउणी, लौढ़ खाऊ मिढा,
दौथी उठिया ढलकी लींढा।

अर्थात अतिथि सत्कार में एक मन भर तो चावल खिलाए हों, एक पूरे मेढ़े का शिकार भी दिया हो, और फिर भी अपमानित शब्द सुनाए तो उस का कौन आदर करेगा। यही कारण है कि कुल्लूई लोग बिना निमन्त्रण के किसी के यहां जाना भी पसन्द नहीं करते, क्योंकि ऐसा करने से उन के नाम पर लांछन लगेगा :—

बीणीछीदा रा पाहुणा
पतौहड़ नाऊं डाहणा।

घर आए मेहमान का यदि ठीक प्रकार से सत्कार न हो तो लोकोक्ति प्रसिद्ध है :—

पाहुणे आए आंई
कुटुआ पिशुआ नांई।

प्राहुण-चारी ही नहीं साधारण रूप में भी कुल्लूई लोग बांट-बंटा कर खाना अधिक पसन्द करते हैं :—

कैलहै खाइदा मौल
बौडिया खाइया फौल

बांट कर खाओ तो फल प्राप्ति है, नहीं तो उस का मैल ही बनेगा।

पहाड़ के लोगों की एक विशेषता शांति-प्रियता है। पहाड़ों का वातावरण लोगों को भी शांत स्वभाव का बना देता है। वह किसी दूसरे कामों में दखल देना कभी उचित नहीं समझते स्वयं एकांत बैठना अधिक पसं करते हैं बिजाए किसी से लड़ाई झगड़ा मोल लेने के। तभी तो लोकोक्ति प्रचलित है :—

दुबली भैड़ नकंग चौरे
न ठेसा लागै न जान मौरे

दुबली भेड़ यदि एकांत में चरने लग जाए तो उसे कोई धक्का लगेगा उसकी जान जाएगी। कुल्लूई लोग खाह-मखाह झगड़ा मोल लेना कभी उचि नहीं समझते "गूह कोतिया घढ़िन्ह खोंजणा" कभी भी समझदारी नहीं होती गन्दगी उछालने से अपने सिर पर गन्द पड़ता है। जीओ और जीने दो के जीवन का मुख्य नियम है। "बैठे माहूं बैं घूं देना" अर्थात शहद के को छेड़ना कोई अकलमन्दी नहीं है। यदि छेड़ोगे तो ये काटेंगे तो जरूर ही भले ही किसी कारण समय पर ईंट का जवाब पत्थर से न भी मिले तो भी बि कारण दखल-अन्दाजी शत्रुता को जन्म देती है, और उस से बदले की भाव जागृत हो जाती हैं, तब वह यह कहे बिना नहीं रह सकता कि को बात नहीं—"नौठै पुनूं थोड़े एदैं बोहू"। कभी न कभी मेरी बारी भी आ जाएगी। यही कारण है कि कुल्लूई समाज काम और उपयोग के उपाय सिवा किसी दूसरी बात को महत्व नहीं देता :—

जौस गोहरा हुडणानी,
सो शांघणी कीजि वै।

कुल्लूई लोकोक्तियों में नैतिक तथ्यों पर आधारित उक्तियों की बहुल है। "बौत छूटा सा संग नी छूटदा" लोकोक्ति में मूल सिद्धांत की बात क गई है। बेशक रास्ता बिछुड़ जाए, संग कभी नहीं छोड़ना चाहिये। मित्र हो तो अटूट हो, साथी बनाया हो तो जन्म-साथी हो। मित्रता हमेशा निष्कपट से निभानी चाहिए। एक दूसरी लोकोक्ति में कहा गया है :—

कुत्ता बैनी लूण, निर्गुणा बैनी गूण

निर्गुण व्यक्ति के लिए गुण की बात वैसे ही है जैसे कुते के लिये नम की बात है। कुते को नमक का कोई प्रयोजन नहीं, वैसे ही कपटी व्यक्ति गुण के सिद्धांत का कोई महत्व नहीं। "तोता खाइया जीह्व फुकिया सा लोकोक्ति में मानव जीवन का एक आदर्श छुपा है। मनुष्य को हर कार्य संतो

से करना चाहिए। जल्दबाजी से कार्य बिगड़ जाते हैं जैसे गर्म भोजन खाने से जिह्वा जल जाती है। नीति जो भी अपनाई जाए उसे सोच समझ कर अपनाना चाहिए। परन्तु एक बार अपनाने के बाद नियम को तोड़ना मानव की भारी कमज़ोरी है। यही बात कुल्लू की लोकोक्ति "पूत्र छूटा सा सूत्र नी छूटदा" में निहित है। पुत्र यदि ठीक रास्ते पर न चले तो उस को छोड़ा जा सकता है, परन्तु नियम को त्यागा नहीं जा सकता। एक और लोकोक्ति में कहा गया है कि "पेट ता पडेश नी बिगड़ने देने" अर्थात पेट और पडौस खराब नहीं होने देने चाहिए। इन दोनों के प्रतिकूल होने से व्यक्ति की अपनी हानि होती है।

नैतिक लोकोक्तियों की तरह तथ्यपूर्ण लोकोक्तियां भी कुल्लू में असंख्य हैं। इन में जीवन की सच्चाइयों का समन्वय होता है। इन से सामाजिक जीवन के विविध अनुभवों का निष्कर्ष मिलता है। 'खाई प्यारी, माई नी प्यारी" लोकोक्ति में आज कल के समाज की कितनी अकथ सच्चाई व्यक्त होती है। मां जैसा रिश्ता भी आज के समाज में कोई महत्व नहीं रखता, अपितु धन का महत्व बहुत है। धन सब कुछ बना देता है। धन की तरह बात या वचन का विशेष महत्व है समय बीत जाता है परन्तु कही गई बात, या दिए गए वचन हमेशा याद रहते हैं।

"दिहाड़े जाआ सी कियाड़े नी जांदे"।

लगता है बड़े परिवार के अवगुण आरम्भ से ही समाज को मालूम थे। जिस परिवार के सदस्य अधिक हों वह परिवार उन्नति नहीं कर सकता। इस का प्रमाण एक कुल्लूई लोकोक्ति से मिलता है:—

बड़ी ज़मीन बड़ा हाला
बड़ा टबर मुंह काला

जिस प्रकार बड़ा परिवार उन्नतिशील नहीं होता वैसे ही अधिक भूमि का भी उचित प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे नियन्त्रण में रख कर काश्ताधीन लाना कठिन हो जाता है। मानव जीवन की एक और सच्चाई देखिये:—

नेड़ हाट, नेड़ घौठ, नेड़ भौठ
खरी नी हुंदी।

हाट, घराट और मयखाना कभी निकट नहीं होने चाहिएं। इन के निकट

होने से खर्च में वृद्धि ही नहीं फिजूल खर्ची भी हो जाती है, क्योंकि नजदी
होने के कारण हर मामूली जरूरत पर भी इन का प्रयोग कर लिया जाता है।

लोकोक्तियों में व्यंग्य का एक विशेष स्थान है। वैसे तो हर लोकोक्ति
में व्यंग्य का अंश जरूर रहता है, परन्तु कुछ लोकोक्तियों का उद्देश्य ही व्यं
होता है। ऐसी लोकोक्तियों में तथ्य अवश्य होता है, लेकिन तथ्य के साथ
साथ एक गहरा व्यंग्य होता है जो अचूक चोट करता है :—

खापर जोई तरह न लाग्रा सा
चूटी री पूल घौरा पजाग्रा सा

कितनी सच्चाई और कितना व्यंग्य है इस लोकोक्ति में, जो प्रायः उ
व्यक्ति की हंसी उड़ाने के लिये कही जाती है जिस की पत्नी उस से बहुत बू
हो। सच-मुच टूटा जूता भी घर तक साथ देता है और आदमी को घर पहुंच
देता है वैसे ही बूढ़ी पत्नी भी पति को ठीक रास्ते पर लगा देती है। इसी तर
एक कन्जूस आदमी की खिल्ली उड़ाई गई है कि उस से कोई वस्तु लेने की आश
ऐसी ही निरर्थक है जैसे कुत्ते के मुंह से शिकार के टूकड़े गिरने की उम्मीद
वेतुकी है :—

कुतै रै मुहांन मास
कीभी बै केरनी आश

ऐसे आदमी की मूर्खता पर हंसी ही आती है, जिसे कभी कहीं अकस्मात
कोई चीज मिली हो और फिर वह हर रोज वहां के चक्कर काटता रहे इस
आशा में कि उसे फिर वहां से कोई चीज मिल जाएगी।

एकी गेरै मारू काकड़
सदाए तोपू झौकड़

हां, यही तो है कि एक बार कहीं झाड़ी में शिकार मार लिया, तो फिर
रोज उसी झाड़ी की तलाश होती रही। इस बात का समर्थन एक मुहावरे से
भी किया गगा है......

"काणे बौलदा रा भुजणू" अन्धा बैल और कहां जा सकता है जहां एक
बार कुछ मिला हो वहीं का चक्कर काटेगा।

मनुष्य को अपनी हैसीयत देखकर व्यवहार करना चाहिये। झूठे अभिमान

की हमेशा खिल्ली उड़ती है । फोका दिखावा अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करवाता है :—

चूटी री पुला री छैड़ बड़ी
चूतड़ माणहुं री तनेट बड़ी

जैसे फटे जूते में आवाज़ अधिक निकलती है वैसे ही छिछले ज्ञान वाले व्यक्ति में भी दिखावा अधिक होता है। बेडौल शरीर या बिना सिधान्त के व्यक्ति के प्रति भी बड़ा तीव्र व्यग्य है :—

देउआ न उथड़ै दानू
मूडां न उथड़ै ज्ञानू

कहते हैं देवता से देव बड़े वैसे ही जैसे सिर से भी ऊपर किसी के जूटने हों।

लोकोक्ति को कहावत भी कहा जाता है। कहावत का अर्थ है कथावत अर्थात् कहावत का विषय कथात्मक होता है। यद्यपि प्रत्येक कहावत के बारे में यह कहना कठिन है कि उस की विषय वस्तु कोई घटना रही होगी, फिर भी इस में सन्देह नहीं कि कई लोकोक्तियों का जन्म किसी घटना के कारण हुआ होता है। कुल्लूई में कथावत लोकोक्तियों की भारी सख्या है। यद्यपि उन सब का यहां वर्णन करना कठिन हो जाएगा, फिर भी उदाहरण रूप में एक-दो का ज़िकर करना युक्ति सगत होगा।

प्रायः देखा जाता है कि बूढी स्त्रियों को अपने पोतों की अपेक्षा दोहतों से अधिक प्यार होता है। एक बार एक बूढ़ी अपने एक छोटे दोहते को पीठ पर उठाए ले जा रही थी पर उसी के हम-उमर पोते को पैदल ले जा रही थी। मार्ग में एक कुत्ता मिला और पीठ पर सवार दोहते ने तुरन्त कहा "कुते आ नानी की टांग खा" परन्तु पैदल चल रहे पोते ने झट पत्थर उठा कर कहा "आ तो सही, अभी पत्थर मारता हूं"। इस घटना ने एक कहावत को जन्म दिया जो प्रायः एहसान फरामोश प्यार के बारे में कही जाती है :—

एड़े कुतेया नानी री जोघां खा

पंजाबी के प्रसिद्ध कवि शाह मुहम्मद ने कहा है "शाह मुहम्मद, आदतां भी जांदियां, भाभें पै जावें पूरिया पूरियां जी"। यह आदतों का हाल है। कुल्लू में किसी वृद्ध स्त्री को खाना खाने के बाद नाचने की आदत थी। एक

बार उस के पुत्र ने कहा "मां" आज मेरे मित्रों ने आना है, आज नाक
मत, वरना मेरी बेइजती हो जाएगी। मैं तुझे एक टका रिश्वत देता हूं।
ने हां भरी। परन्तु आदत तो पक चुकी थी। खाना खाते ही उस से रहा
गया। टका वापिस करते हुए बोली :—

टक्का ले बेटा आपना
डोई पाया मूं नौचणा ए नौचणा।

और यह अब हठी व्यवहार के प्रति अभिव्यक्ति के लिए लोकोक्ति
गई है। इसी तरह की कई अन्य घटना-प्रधान लोकोक्तियां हैं कुल्लू
प्रसिद्ध हैं।

आज की हिन्दी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियां

डा० ओम प्रकाश

मार्कण्डेय की कहानी 'काक्रोच' का शीर्षक देखने पर हमें एकदम काफ़का की याद आ जाती है जिस में जार्ज सैम्सा नाम का जर्मन यात्री-सेल्समैन सुबह उठने पर पाता है कि वह मनुष्य न होकर एक काक्रोच है—एक तिलचट्टा है। कहानी के अन्तरग में झांके बिना हम इस से सहज ही में यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आज की कहानी विदेशी चिन्तन और टैक्नीक से प्रभावित है। इस का प्रमुख कारण सम्भवतः यह है कि साहित्यकार ने मान लिया है कि मानवीय नियति सभी देशों में एक सी है। समय और स्थान की दूरियां सिमट जाने के फलस्वरूप कहानी को सार्वभौमिक स्तर पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन इस का यह अभिप्राय कतई नहीं है कि नई कहानी देशीय परिवेश से अलग जा पड़ी है।

आज सारे इन्सान यथार्थ के प्रकाश में यह देख कर हैरान हैं कि जिस को इन्सान कहा जाता है, वह परिवेश और व्यवस्था की सीमाओं में जकड़ा निरीह और मजबूर प्राणी है। उस की आज़ादी एक विडम्बना है। विचार और भाव की शक्तियां उस की दशा को और भी दयनीय बना देती हैं। एक ओर उसके कन्धों पर भारी उत्तरदायित्व है तो दूसरी ओर वह चाह कर भी कुछ कर नहीं पाता और इसी लिए उसे मिलती है—अक्षय पीड़ा।

आदिम युग में मनुष्य को सर्प, परियां या इसी प्रकार की अन्य मनुष्येत्तर

शक्तियां त्राण प्रदान करती थीं। इतिहास के विकास के साथ-साथ मनुष्य चिन्तन का ढंग और तदनुरुप प्रतीकों की व्यवस्था भी बदलती जा रही परिवेश के बदल जाने के फलस्वरूप मनुष्य प्रतीक भी नये परिवेश चुनता है।

मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि उसे किसी व्यवस्था से सन्तोष प्र नहीं होता। अस्तित्व के लिए जरूरी है कि यदि जीना है तो मनुष्य न कोई व्यवस्था अपने लिए चुन ले। लेकिन हर नई व्यवस्था से वह ऊब जाता है, इसलिए आज की कहानी का स्वर अनास्था और ऊब का है।

हिन्दी की नयी कहानी सामान्यता १९५० के बाद की कहानी १९४९ वे १९५० का अन्तराल एक ऐसा समय है जब हर चीज "मेल्टिंग प में थी। आज़ादी का रक्त भरा चेहरा जनता को देश के विभाजन, हि मुस्लिम दंगों; शरणार्थी-समस्या के साथ ही निराश करने लगा था। फि भी एक तरह का आशावाद, भविष्य के प्रति एक आस्था का भाव विद्य था। नेताओं की योग्यता में उसे विश्वास था। नव-निर्माण की लालस साहित्यकार को आशा के रज्जु से बांधे रखा। शांति के नारे से दिन बढ़ते देश के सम्मान से वह गौरवान्वित अनुभव करता था। लेकिन धीरे पर्दे उठते चले गए और उसे ज्ञात हुआ कि जिसे वह सत्य समझ बैठा उसके चारों ओर ऐसे अनेक कठोर सत्य विद्यमान थे जो उसे निराश ही कर थे। चुनाव कुर्सियों के लिए घिनौनी दौड़ बन कर रह गए, भ्रष्टाचार आक्टोपस हमें हर दिशा से जकड़ने लगा। टूटता पारिवारिक जीवन, पुरुष के बीच नए सम्बन्ध-सूत्रों की तलाश एवं आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग नयी कहानी के विषय बन गए। भीड़ भरी जिन्दगी में पति-पत्नी, प्रेमिका के अर्थ बदलने लगे जिस के कारण वे एक दूसरे को सही-सही पाने में असमर्थ होने लगे। अद्यतन कहानी इन्हीं समस्याओं को आगे बढ़ रही है।

आज ज़िन्दगी की रोटीन में सभी सम्बन्ध जल्दी ही बासी और ऊब हो जाते हैं। शैलेश मटियानी की कहानी 'देहान्त' का यह उदा प्रस्तुत है—

"उसने अपनी पत्नी की वस्त्र-रहितता को ऐसे देखा जैसे खिड़की से रोज दिखाई आने वाले किसी प्राकृतिक दृश्य को देख रहा हो।

(पत्नी) भी लापरवाह सी बैठी रही। जब सामान्य जीवन से मनुष्य रोमांचित नहीं होता तो वह असाधारण की ओर झुकता है। जीवन में ग्लेमर बढ़ता चला जाता है—उद्देश्यहीन गति के साथ।

कहानियों में बुरांश या सिलवर ओक के पेड़ आने लगे हैं। वस्त्रों में स्लीवलेस बलाऊज और प्रिंटेड रुबिया की नाइटी का जिक्र देखने को मिलता है, भाषा में अंग्रेजीयत झलकने लगी है।

सांत्वना निगम की कहानी 'एक और सीता' के ये संवाद देखिए—

"अगर सचमुच डीपली किसी के साथ इन्वाल्व हो जाओ तो सारी जिन्दगी मन में उस आदमी के प्रति कैसी टेंडरनेस पनप जाती है!

खास कर अगर उसके साथ शादी न हो सके तो—

देखो-देखो सपने खूब देखो।"

दफ्तर में काम करती स्टेनों का यह जिक्र सुरेन्द्र वर्मा की कहानी "घर से घर तक" में है—

"वह कारोबारी बारीक मुस्कान से उसके कैबिन में दाखिल होती थी और निगाह झुकाए हुए हस्ताक्षर के लिए खुली फाइल मेज पर रख देती थी वापिस लौटते हुए खुले अंगों की त्वचा पर बराबर उस की दृष्टि की ऊष्मा का अनुभव होता था।"

नारी ने आज, जहां अपने अधिकार पहिचाने हैं, वहां सभी सीमाएं तोड़ कर भी आगे बढ़ने लगी है।

"औरत सदा मर्द के लिए जिन्दा रही है—पति के मरने पर वह लाश के साथ जलती रही है—यदि बच्चा नाजायज हो तो आत्म-हत्या औरत ही करती है, मर्द नहीं"—इन विचारों की उधेड़-बुन में दीप्ति खडेलवाल की कहानी हव्वा की नायिका निश्चित करती है—"मुझे अपने नारी शरीर की नियति में मरना नहीं जीना सीखना है। वह मनरो जैसे बाल कटवाते हुए कहती है—"मैं स्यूसाइड करूंगी नहीं, करवाउंगी। सारे नियम, सारे बंधन, सारी वर्जनाएं या टैबू सिर्फ औरत के लिए?"

उसने मन में सोचा था यदि पुरुष की जिन्दगी में कई औरतों का आना सहज है तो औरत की जिन्दगी में कई पुरुष असहज क्यों?

अविवाहित मातृत्व कठोर सत्य बन कर सामने आने लगा है। सुशील गुप्ता की कहानी 'अभिशप्त' की सोनल अपने प्रेमी से यह कहने का साहस रखती है तुम्हारे साथ बिन ब्याहे रह लिया, टीनू की मां बन गई तो मुझ में इतना साहस भी है कि उसे अपना बेटा कह पुकार सकूं।"

स्वतन्त्रता—प्राप्ति के बाद जिस बदलाव को व्यक्ति, परिवार और समाज ने सहा है, उस की छाप आज की कहानी पर पूरी गहराई के साथ अंकित है। आज की हिन्दी कहानी में मूल्यों का विघटन, अव्यवस्था आदि के जो स्वर हैं, वे परिवेश से उपजे हैं। आज पुराने आदर्श खोखले, बदली हुई स्थितियों में व्यर्थ समझे जाने लगे हैं। आदर्श के बोझ को ढोता हुआ इन्सान विद्रोही होने लगा है।

सुशील शुक्ल की कहानी "इनर्शिया" में दो युवकों का वार्तालाप इस प्रकार है—

"यू नो द रीजन। दे एडवरटाइज़ द पोस्टस मीयरली फार दि सेक आव फारमेल्टी।

जानता हूं। क्या तुम्हें नहीं लगता कि हम कभी-कभी जान कर अनजान बने रहना चाहते हैं।"

युद्ध और उसके परिणाम-स्वरूप प्राप्त विजय का उल्लास देर तक चलने वाला नहीं था। देश की जनता और नेता दोनों के सामने एक मंज़िल थी—गरीबी हटानी है। भरसक प्रयत्नों के बावजूद वही सामाजिक विषमताएं, वही मंहगाई, वही बेकारी! ऐसे में साहित्यकार आंखें मूंदे नहीं बैठ सकता।

रमेश उपाध्याय की कहानी "आने वाले के लिए" में जागीरदार कुमरजी ने चन्ना की गर्भवती पत्नी के पेट में लात मारी है। चन्ना क्या कर सकता है? पंचायत उस का साथ नहीं देती। उसके पास एक ही उपाय है—गांव छोड़ कर भाग जाए। लेकिन उसके ये शब्द उल्लेखनीय हैं।

"यह मत समझना कि आज जो कुछ हुआ है उसे मैं भूल जाऊंगा। मैं भूल भी गया, तो वह नहीं भूलेगा जिस ने मां के पेट में ही कुमर जी की लात खाई है।"

आने वाली पीढ़ी निश्चित रूप से विद्रोही होगी। शोषण का बदला लेगी। आज डिग्रियों का पुलिंदा उठाए नौजवान बेकार हैं, दिन भर मेहनत

करता मज़दूर भूखा है, हृदयेश की कहानी "एक भूमिका" में सत्रह वर्ष का छात्र हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करता है किन्तु घर की अव्यवस्था में वह अपना मन किताबों में नहीं गढ़ा पाता। उस का भाई कार्पोरेशन में क्लर्क है। आर्थिक तनाव पारिवारिक सम्बन्धों पर भी हावी होते हैं, अपने घर के सामने वह एक इश्तहार देखता है—साबुनों का सरताज हिमालय सोप—स्वयं भी इस्तेमाल कीजिए और मित्रों को भी सलाह दीजिए। वह युवक रात के अन्धेरे में उसे यूं बदल देता है—"चोर बाजारी और तस्करों का सरताज माता प्रसाद गुप्ता। स्वयं भी, जानिए और दूसरों को भी बताइए।" उस लड़के ने अपना 'छद्म' नाम रखा—राघव भौंसले और खाद्य विभाग के रिश्वत-खोर इस्पेक्टर को धमकी भरा पत्र लिखा और अंत में एक दिन जब उसे ज्ञात हुआ कि शिव मन्दिर में पूजा करने वाला एक ईमानदार व्यक्ति मुकद्दमा हार गया है, तो वह एक तनी हुई मुद्रा में मन्दिर के सामने से निकल गया—एक भरे पूरे विद्रोही का जन्म हो चुका था।

प्रधानतया आज की कहानी हर स्तर पर विद्रोह की है, विषय और भाव के अतिरिक्त शिल्प के क्षेत्र में भी। आज किसी शास्त्रकार द्वारा नियत तत्वों के आधार पर किसी ऐसे सांचे का निर्माण नहीं किया जा सकता जिस में हर कहानी को ढाला जा सके। भाव और टैक्नीक की दृष्टि से जितनी विविधता कहानी में मिलती है, उतनी किसी अन्य विधा में नहीं। साहित्य के विकास की दृष्टि से यह स्वतंत्रता अच्छी ही कही जा सकती है।
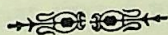
परमानन्द की कश्मीरी कविता —"कर्म-भूमिका"

सन्तोष राज़दान

✻

कविवर परमानन्द मार्तण्ड (मटन) नामक गांव के निकट १७१९ ई० में उत्पन्न हुए और सन् १८७९ ई० में इनका देहान्त हुआ। इनके पिता कृष्ण पण्डित तथा माता सरस्वती थीं। इनका विवाह मालद्यद से हुआ था। ये बड़े ही नम्र और सरल स्वभाव के थे परन्तु इन की पत्नी बड़ी ही उग्र और कठोर स्वभाव की थी। पारिवारिक सुख से हीन होने के कारण परमानन्द काफी समय तक साधु-सन्तों के संग रहे। इन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा मार्तण्ड की यात्रा करने वाले एक यात्री स्वामी सव्यानन्द से सुनी। इसी तीर्थ यात्रा में आये हुए एक सिक्ख साधु ने उनको गुरुग्रन्थ साहब का अध्ययन भी कराया। ये स्वामी परमानन्द ही थे जिन्होंने कश्मीरी में कृष्ण भक्ति सम्बन्धी काव्य का पूर्ण रूपेण आरम्भ किया।

परमानन्द बाल्यावस्था से ही फारसी में 'गरीब' उपनाम से कवितायें करते थे और इस के पश्चात 'परमानन्द' उपनाम से कश्मीरी में कवितायें करने लगे तथा इस प्रकार अन्त में परमानन्द नाम से ही प्रसिद्ध हुए। परमानन्द की कृष्ण भक्ति सम्बन्धी काव्य रचनाओं में १. 'राधा स्वयंवर' और २. 'सुदामाचरित'—भक्ति भावना, दार्शनिकता, मुहावरों तथा तुलनात्मकता आदि में अद्वितीय हैं।

'सुदामाचरित' में भगवान श्री कृष्ण और दरिद्र सखा सुदामा के मिलन

की प्रसिद्ध घटना का चित्रण है। राधास्वयंवर में श्री कृष्ण और राधा के विवाह का चित्रण है। राधा को कवि ने प्रकृति के रूप में और कृष्ण को पुरुष के रूप में चित्रित किया है।

यद्यपि आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले रूप भवानी (१६२५-१७२४) से कश्मीरी हिन्दी का मिश्रण आरम्भ होता है तथापि ये परमानन्द ही थे जिन्होंने कश्मीरी कविता करने के साथ साथ हिन्दी कविता का श्रीगणेश भी किया।

अब मैं लेखक की धार्मिक व दार्शनिक कविता 'कर्मभूमिका' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करती हूं जो कि मैंने पी. एन आर की पुस्तक 'कश्मीर में हिन्दी, से लिया है जिस का कि उपर सकेत किया गया है।

१ (कश्मीरी)—कर्म भूमिकायि दिजह धर्मु कबल-सतोषह बियालिह बुविह आनन्द फल

दुयि प्रानह दान्दह जोयूर दिइन त रात वाय-कुम्भकि लोरि ज़ोरि तिम लाई

हिलह कर युथनह बीट रोजिह अख रियल-संतोषह बियालिह बुविह आनन्द फल

(हिन्दी) कर्म भूमिका की दीजिये
धर्म का बल
उगेंगे सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल।
रात दिन भूमि लो जोतने
जुड़वां बैलों को अधीन कर
कठिन परिश्रम करने को
कुम्बा के चाबुक से मारो।
एक टुकड़ा भी जोते बिना न रहे
जागो और यह देखने का काम कर।

२ (कश्मीरी)—लोलकि आलह फालह तोलह नाविथ-ब्येरह ब्यठ फुरिह दितह फुटहराबिथ

वैरूक सूह युथनह रोजयस तल—सतोषह बियालिह बुविह आनन्द फल।

२ (हिन्दी) भूमि को जोतने
प्रेम की बैल जोड़ी का उठाओ लाभ,
न रहे भीतर घृणा की तरी
अटूट धैर्य की सहायता से
टुकड़े करो भूमि के कठोर पिंडों के
उगाओ सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आन्नद फल ।

३ (कश्मीरी)—वेचारह बठिह तह बेरह लदिथ किथ—श्रोत्त यन्ह द्यव सिजराविथ
समस दृष्टिह पातजन अदह फेरिह ज़ल—सन्तोषह बियाल बुविह आनन्द फ

(हिन्दी) मेंटों को चिकना करो और उभारो
किनारों को उनके हो के सावधान चित्त,
काटो एक निकास और डालो रोक
अभिमुख स्रोत की शक्ति कि जिससे
बहे खेत में जल हो के सम-चित ।
उगाओ सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल ।

४ (कश्मीरी)—सोन्थ छुई दुह तारह मुत यावुन—पीजह पजिह साया रावर
वव ब्योल मो प्रार कर मंगल—सन्तोष बियालिह बुविह आनन्द फ

(हिन्दी) वसन्त सौन्दर्य प्रताप और खुशी की
एक क्षणिक स्थिति है,
एक क्षण भी त्यागो मत
इस अवसर की स्थिति का
करो प्रतीक्षा मत बोने बीज काम के,
काम करो परिणाम में खुशी के लिए ।
उगेंगे सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल ।

५ (कश्मीरी)—ओपरिथ फौरनायिह् नाम डोबदर—सेह् के रबिह् चकिह् सीत्यन बर ।

इन्द्रिय गगरन कर बुठल—सन्तोषह् बियालिह् बुविह् आनन्द फल ।

(हिन्दी) काम करने को तू न कर प्रतीक्षा

अपने दांई बांई तू चौकस रह

ठीक कर तुम में जो हों दोष भी

अपने दोषों को गुणों से दूर कर

नाश के इन कारणों को नष्ट करने

वश में करो अपनी इन्द्रियों को

उगेंगे सन्तोष बीज तब

उत्पन्न करने आनन्द फल ।

६ (कश्मीरी)—बखीतह् सन्जह् निंदिह् फेरि सावस नाई खेत—हेलिह् नेरिह् तपह् के प्पह् सगह् सीत ।

समभावह् नायह् फुलिह् पमपोषह् डल—संतोषह् बियालिह् बुविह् आनन्द फल ।

(हिन्दी) हां लगन और भक्ति से तू काम कर

हो जाये यह खेत तेरा हरा और फल भरा

पकाओ फल को तपस के अन्तिम सिंचन से

खिलायेगी मन की शान्ति तब ।

कमल के फैलाव के फूलों को

उगाओ सन्तोष बीज तब

और काटो आनन्द फल ।

७ (कश्मीरी)—विषय पशरारिह् रछनावुक—तिम्नई अभिह् युथनह् खेत खियावक ।

भावुचिह् रावुचिह् नेर निष्कल—संतोषह् बियालिह् बुविह् आनन्द फल ।

(हिन्दी) करो प्राप्त विजय अपने लालस और लोभ पर

हो न ऐसा कि कुतरे पक्के खेत तुम्हारे

विचार से प्रेम और अनुराग के

रात दिन करो सन्तोष पूर्ण रखवाली

उगाओ सन्तोष बीज तब

उत्पन्न करने आनन्द फल ।

८ (कश्मीरी)—हेलिह यलिह नेरिह तेलि सुपनिसक्राव–वैरागह द्रांतिह यीत लूनि त्राव

सम्बन्धह सुसतह साविन वल–संतोषह बियालिह बुविह आनन्द फल

(हिन्दी) और जब बौराने लगें ये खेत

आ गया है समय विनोद का तब

हँसुवे से आत्म त्याग के लवण करो इसका

और डालो गुच्छों में इकठा करने

ले लो सहायता तब अपने सम्बन्धियों की

और बांधो इस की गठरी

है यही सन्तोष बीज तब

उत्पन्न करने आनन्द फल ।

९. (कश्मीरी)—मटह खसिह निचह रजिह मटह मटह सार–साधीनह अन्तह बाइ बन्द तह यार

नित्यह नेक सुमरित अदह समिह खल–संतोषह बियालिह बुविह आनन्द फल

(हिन्दी) बांधो फिर रस्सियों से इसको और ले जाओ

संग्रह करने ढेरों में,

बुलाओ फिर अपने सब मित्रों को

ले जाने इस को अपने साथ

और करोगे जब संग्रह इसका प्रेम और भक्ति से

मिलेगी इस से सच्ची शान्ति

उगाओ सन्तोष बीज तब

उत्पन्न करने आनन्द फल ।

१० (कश्मीरी)—त्रगुणह त्यागह न०म अख गुण लद–निरमानह प्रावक निरवानह पद

राम तत तम दिथ कर कोशल—सन्तोषह बियालिह वुविल आनन्द फल

(हिन्दी) पूर्ण भक्ति से तू यह काम कर
प्रशंसा की न कर इच्छा कभी
दोष कोई दे तुझे यह गम न कर
तब कहीं मिल जाये मुक्ति का साधन तुम्हें
उगाओ सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल।

११ (कश्मीरी)—ध्यानह् धारनायह् वानह् मोन्डुव सत्तार—ज्ञानह् दानह्
खासह् गासह् पन्जह् चार।
मनह् के अनुह् भवह् वारह् दिथ छल—सन्तोष बियालिह्
बुविह् आनन्द फल।

(हिन्दी) पीटो अन्न के बाल को ध्यान के लट्ठों पर;
पृथक करो धान्य को और तब,
हटाओ छिलका करने सूक्ष्म परीक्षा
प्रत्यक्षीकरण के शुद्ध धान्य की
करके ऐसा, तोलो धान्य को
तह पर अपने पवित्र हृदय के
उगाओ पुन: सन्तोष बीज तब
आवृति करने आनन्द फल की।

१० (कश्मीरी)—त्यागह् के अथह् सीति वारह् छवहं नाव—प्रुनतय जग
फुटहज्रन ब्युन ब्युन थाव।
ज्ञागिह् रोज लागिह् निह् त्राविथ जुल—सन्तोषह् बियालिह्
बुविह् आनन्द फल।

(हिन्दी) आत्म त्याग के हाथों से
पिटने दो ठीक से अन्न की बालियों को
करो सूक्ष्म परीक्षा और संग्रह करो भद्दे धान्य का
प्रत्येक पृथक पृथक ढेर में
लो काम अपने मस्तिष्क से और देखो
हो न ऐसा कि पड़े सामना करना अपनी भूल का
उगाओ सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल।

१३ (कश्मीरी)—तूलिथ अदह् थाव अम्बरन माल—सुह्मकिह् हायकह् सीति नखह् वाल

लुतिह् बोर वातनाविय खनह् बल—सन्तोषह् बियालिह् बुविह् आनन्द फल।

(हिन्दी) तोलो फिर तुम अपना धान्य और
संचय करो इसे पृथ्क ढेरों में।
सोऽहं परिमाणों में संग्रह करो इसका
पूरा ऋण चुकाने अपना।
करो हल्का अपना बोझ
ले जा कर इस को खन्नाबल
उगाओ सन्तोष बीज तब
लवन करने आनन्द फल।

१४ (कश्मीरी)—शमय दमह् यमय निमह् द्याठ व्रातनावुनाद—शांत श्रद्दाई जलह् पकह् नांव नाव।

पानस शिह्‌लित मानस बल—सन्तोषह् बियालिह् बुविह् आनन्द फल।

(हिन्दी) स्तुति और गम्भीर ध्यान के साथ
ले जाओ इस को घाट पर,
चलाओ अपनी नाव को
भक्ति के शांत जल में।
मुक्त करो अपने मन को इस बोझ से और
ले लो आनन्द मानसबल की आन्निदत मन्द पवन का
उगाओ सन्तोष बीज तब
संग्रह करने आनन्द फल।

१५ (कश्मीरी)—लागिह नियह बालिह माल आगस तार—खाल युथनह रोजिह हार जागिरदार

फाजिल तह वाकई नेरिह कस तल—सन्तोषह बियालिह बुविह आनन्द फल

(हिन्दी) सामग्री को अब स्वामी तक आगे बढ़ाओ
छीन लेना न चाहिए तुम्हें खेत जोतने वालों को।

अन्त में किस से ठीक की जायेगी रोकड़ बाकी ?
बचायी जाये किस के लिये अधिकता ?
उगाओ सन्तोष बीज तब
लवन करने आनन्द फल।

१६ (कश्मीरी)—संचित बेंययह ब्योल चांरितथाव —सोन्थ यलिह तेलिह फलिह फलिह वव।
बुपुनिई वुपकारह नोव नोव फल— सन्तोषह बुयालिह वुविह आनन्द फल।

(हिन्दी) करो सूक्ष्म परीक्षा अच्छे धान्य की और
बीज के लिए इसे संचित करो;
उगाओ पुनः बीज तब
आये जब वसन्त ऋतु
करेगा उत्पन्न यह अच्छा कार्य
नया और सदा नया फल
उगाओ सन्तोष बीज तब
लवन करने आनन्द फल।

१७ (कश्मीरी)—योगह मायाइह हुन्ति भूगी आस—यई छुई दुवइ तस पानस कास।
साधह नाव पियई तइ साधह मोड़ल—सन्तोषह बियालिह वुविह आनन्द फल।

(हिन्दी) योग माया का बनो भोगी
और बदल डालो अपने द्विधा विचारों को
तुम्हें 'साधु' का नाम दिया है
और एक साधु तुम्हें बनना चाहिए
उगाओ सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल।

१८ (कश्मीरी)—कर्मह फल सुखै गुरह शब्दै—सन्चितह कर्मह मान प्रारब्धै।
कर्मह कांडह ज्ञानह नेरिह नारह बुज़मल—सन्तोषह बियालिह वुविह आनन्द फल।

(हिन्दी) मुक्त करेगा तुम्हें तुम्हारे गुरु का शब्द
जीवन और मृत्यु के चक्र से
बीते हुये अपने कर्म को
मानों अपना संचित प्रारब्ध
कर्म काण्ड के ज्ञान से
उठेगी चिंगारी बिजली की कड़क की
उगाओ सन्तोष बीज तब
उत्पन्न करने आनन्द फल।

१९ (कश्मीरी)—सोहम परागाशकिह विज्ञनियानय—त्राविथ मान बयइह अभिमान
पावित रोज़ दादह शान्थ मन्डल—सन्तोषह बियालिह वुविह आनन्द फल

(हिन्दी) सोऽहं की दिव्य ज्योति से तब
सूचित किया जायेगा तुम को
आदर और अपमान की
समस्याओं के लिये रहना असावधान
और करोगे प्राप्त इस प्रकार तुम
अनन्त आनन्द।
उगाओ सन्तोप बीज तब
लवन करने आनन्द फल।

२० (कश्मीरी)—परमानन्दह ओस ज़मीनदार—हूरित धनह दियार रूजस न लार
चांगंजि वारिच च़जिस गांगल—सन्तोषह बियालिह बुविह आनन्द फल

(हिन्दी) था कवि परमानन्द इक ज़मींदार
अपना पूरा ऋण चुका कर
वह न भागी था कभी अपमान का
उस ने पालन कर लिया कर्त्तव्य का
और कन्धों से हटाया बोझ को
वह निःसन्देह मुक्त था
जन्म के और मरन के चक्र से
उगाओ सन्तोष बीज तब
लवन करने आनन्द फल।

मुद्रा राक्षस

कमला मशोक

※

महाराज पृथु के पुत्र तथा सामन्त बटेश्वर दत्त के पौत्र श्री विशाख दत्त प्रणीत यह नाटक न केवल संस्कृत नाट्य-साहित्य में अपितु विश्व के नाट्य-साहित्य में एक महान कीर्तिस्तम्भ है। यद्यपि इस नाटक को तात्कालिक ख्याति नहीं मिली पर इस में कृति का दोष नहीं। रत्नों की परख के लिये जौहरी की आंखें चाहियें। कालान्तर में इस रत्न की दीप्ति ने प्रबुद्ध आलोचकों को आकृष्ट किया फलतः यह अपने अनुरूप सम्मान का पात्र बना।

सस्कृत नाटककारों का रुझान शृंगार के मधुर चित्रों में था। शृंगार का आधार श्रेष्ठ नायक, अनुपम रूप गुणवती नायिका, उस की सखियां, साज-सज्जा, संवाद, मदनोत्सव। शृंगार के परिवेश में निहित नाटक की काव्यमयी कल्पनासुष्ठ सोद्देश्य अभिनय परक उक्तियां, सुखान्त फलागम की ओर सचेष्ठ अनुकरण और आत्मप्रकाशन जीवन की मूल वृत्ति हैं अतः जीवन के सभी रसों का राजा 'रसराज' शृंगार नाटक में यदि आद्योपांत: प्रवहमान रहे यह स्वाभाविक लगता है। किन्तु वह भी मान्य तथ्य है कि भावलोक में शृंगार यदि सर्वाधिक गृहीत है तो प्रत्यक्ष लोक में राजनीति। What cuts deep in politics cuts alround. विशाखदत्त ने इस मर्म को समझा और सर्वथा शृंगारबिहीन किन्तु राजनीति से परिपूर्ण इस विलक्षण सरस नाटक की रचना की। कामसूत्र का आख्याता वात्स्यायन यहां चाणक्य के लोह रूप में कौमुदी-महोत्सव का निषेध करता है। प्रणय की सामन्तीय प्रवृति यहां जैसे मुंह छिपाये है। संघर्ष की व्यूह रचना की वेला है, आसेतु हिमाचल एक सुदृढ़

राज्य की स्थापना करने का दृढ़ संकल्प है, कर्म दुर्दान्त क्षणों में ओज चाहिये माधुर्य नहीं।

विशाखदत्त की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने परम्परागत रीतियों को ग्रहण न करते हुए एक नया मार्ग बनाया जो आज की परिस्थितियों में भी प्रशस्त लग रहा है। इस में शृंगार की उपेक्षा नहीं अपितु जीवन के लिये व्यावहारिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण तत्व राजनीति का ग्रहण निरूपण है और वह भी अद्भुत सौष्ठव के साथ।

कथावस्तु—

नाटक का इतिवृत्त ऐतिहासिक है। गुणाढ्य की बृहत्कथा को भी इस का आधार माना गया है। चाणक्य द्वारा नंद वंश का समूल नाश, चन्द्रगुप्त के सिंहासनारोहण के पश्चात राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनने पर सहमत करना ही इस नाटक का मुख्य लक्ष्य है। कथा सात अंकों में विभाजित है दृश्य योजना नहीं है, पंचम अंक में अंकावतार का प्रयोग है। कथावस्तु के आवश्यक गुणों के अतिरिक्त कार्य की पंचचरणी अवस्थायें सहज द्रष्टव्य हैं।

प्रथम अंक के प्रारंभ और अंत में चाणक्य की सिंहगर्जना है कि मेरे जीते जी चन्द्रगुप्त को कौन पकड़ सकता है और वह अपनी बुद्धि के बल से राक्षस को उसी तरह वश में कर लेगा जैसे कोई हस्तिपक बुद्धि के द्वारा निरंकुश मस्त जंगली हाथी को जंजीरों में बांध लेता है। राक्षस चतुर शिकारी चाणक्य के बिछाये हुए जाल में कैसे आता है, चाणक्य की षड्गुणी नीति रज्जु उसे बांध लेती है। राक्षस को वश में करने का संकल्प 'बीज', उस की मुद्रा प्राप्त करना 'बिन्दु', राक्षस की योजनाओं की असफलता संबन्धी राक्षस और विरोधक की लम्बी वार्ता पताका, करभक द्वारा चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य की कृतक कलह का प्रकाश 'प्रकरी', पश्चात राक्षस का समर्पण 'कार्य' अर्थ प्रकृति हैं।

द्वितीय अंक में राक्षस की राजनीति पटुता का सजीव चित्रण है। विषकन्या के प्रयोग द्वारा चन्द्रगुप्त के विनाश की उस की योजना उल्टे पर्वतक के विनाश का कारण बनी, अन्य गुप्तचर भी चाणक्य की सतर्कता से मृत्यु का ग्रास बने अब एक मात्र भेद नीति द्वारा वह चन्द्रगुप्त को दुर्बल व असहाय बनाना चाहता है।

तृतीय अंक में कूटनीतिज्ञ चाणक्य और चन्द्रगुप्त की सुनियोजित कृत्रिम कलह का दृश्य है।

चतुर्थ अंक में इस वैमनस्य की सूचना से हर्षित राक्षस चन्द्रगुप्त को घोर मंत्री संकट में जान कर मलयकेतु को उस पर आक्रमण करने का परामर्श देता है। इधर चाणक्य के गुप्तचर भागुरायण द्वारा मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति अविश्वास उत्पन्न करने का प्रयास है।

पंचम अंक में जीवसिद्धि द्वारा भागुरायण के समक्ष राक्षस की निंदा, मलयकेतु का छिप कर सुनना, सिद्धार्थक का पत्र, आभूषण, छद्म व्यवहार, फलतः मलयकेतु का राक्षस के प्रति विद्रूप भाव आदि का वर्णन है।

षष्ठ अंक में मलयकेतु का बन्दी बनना, राक्षस का अपने मित्र चन्दन दास की रक्षा हेतु जाना, इस का सफल व भावपूर्ण वर्णन है।

अंतिम अंक में बधस्थल पर चन्दन दास राक्षस का आगमन, राक्षस की चाणक्य और चन्द्रगुप्त से भेंट-वार्ता के पश्चात उसका समर्पण, अन्तर्द्वन्द्व को छोड़ चन्द्रगुप्त का प्रधान अमात्य बनने पर स्वीकृति।

भरत वाक्य से नाटक समाप्त होता है। वस्तु–संयोजन अत्यंत कौशल से किया गया है। प्रत्येक घटना, पात्र, उनका उच्चरित प्रत्येक शब्द अथच भावभंगिमा भी अपने में महत्वपूर्ण है और कथाप्रवाह में सहायक है। संयोजन सौष्ठव में नाटककार अप्रतिम है।

चाणक्य विजयी होता है। मलयकेतु की सहायतार्थ आये हुए राजा, उनकी सेनायें, मलयकेतु के मदोन्मत हाथी शत्रु नारियों को अपने खुरों की धूल से धूसरित कर देने वाले वायुवेगी तुरग, राक्षस की रणपुलकित संगिनी तलवार सब का प्रभावी उल्लेख है पर उपयोग कहीं नहीं है। चाणक्य की बुद्धि ने जैसे शत सेनाओं को पराजित करके रख दिया हो, चन्द्रगुप्त को एक बाण भी न चलाना पड़ा, रक्त की एक बूंद भी न गिरी और युद्ध जीत लिया गया।

चाणक्य का कपटाचरण और उसकी प्रतिनीतियां सहज दृष्टि से अभद्र लग सकती हैं किन्तु गभीरता से देखने पर उन में निहित चाणक्य की अद्भुत दूरदर्शिता ही प्रकट होती है। राज्यों की उथल-पुथल में यहां व्यापक हिंसाएं होना साधारण बात है वहां हाथी घोड़े युद्ध के लिये सुसज्जित खड़े के खड़े रह जाते हैं, शान्तिप्रिय दूरदर्शी चाणक्य शत्रु राक्षस को सुरक्षित रखता है,

प्रथम उसे नीति युद्ध में परास्त करता है पश्चात चन्द्रगुप्त के लिये उस
सेवायें लेता है। यह इतिहास की एक अनूठी घटना है। चाणक्य के दा
पेचों की जटिलता के समान ही नाटककार को इस अद्भुत घटना का चित्र
करने में घोर परिश्रम करना पड़ा यह असंदिग्ध है।

परम्परागत दृष्टि से चन्द्रगुप्त को ही नायक मानना उचित होगा
यद्यपि नाटक के शीर्षक में राक्षस और उस की मुद्रा का महत्वपूर्ण उल्लेख
तथापि इस उल्लेख में भी राक्षस की पराजय की कथा छिपी हुई है। चाण
सर्वाधिक प्रभावशाली पात्र है, वस्तुतः वही सूत्रधार है पर उस की गतिवि
उस की योजनायें चन्द्रगुप्त के निमित्त हैं, राक्षस के समर्पण से वह अब पू
काम हो अपनी शिखा बांधने को समुत्सुक है पर यह उस की शिखा ही न
बंधी, यह आसेतु हिमाचल चन्द्रगुप्त के राज्य की लक्ष्मी उस से सुदृढ़ता पूर्व
बधी है, मनोमालिन्य दूर हो कर राक्षस की प्रशासन क्षमता तथा निष्ठा मान
चन्द्रगुप्त के मुकुट से बंधी है। प्रारम्भ में चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त क
उल्लेख और अंत में उसे राक्षस द्वारा आशीर्वचन मध्य उसी को अमात्य प्रा
के हेतु किये गए प्रयत्न, समस्त नाटक में चन्द्रगुप्त की प्रत्यक्ष या परोक्ष
में आद्यन्त उपस्थिति का प्रमाण हैं। उसी को नायक मानना उचित होगा।

चरित्र चित्रण में नाटककार ने कहीं कहीं आकृति सूचक मुद्रा वर्ण
किया है। पात्रों की चारित्रिक विशेषतायें और दुर्बलतायें अत्यंत सजी
रूप में प्रकट हुई हैं। प्रमुख पात्र भी युग्म रूप में है और उन की प्रमु
विशेषतायें भी अन्तर्विरोधमयी। राक्षस, जिस के वास्तविक नाम सुबुद्धि शर्म
का कहीं उल्लेख नहीं है, अपने शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक विशिष्टता
और कोमल करुण भावों से ओत-प्रोत दिखाया गया है। वह पुरुषार्थी है प
भाग्यवादी भी है, कृत संकल्प है पर भावुक है, अद्भुत प्रशासक है प
असावधान है। चाणक्य क्रूर प्रतीत होता है दुरात्मा वा महात्मा वस्तु
कोमल शान्तिप्रिय है, उस का एक ही स्वार्थ है परार्थ में लीन रहना, साम्रा
का निर्माता स्वयं भग्न कुटी में निवास करता है, आदर्श सादगी पांडित्य
मूर्ति, छल भी किया तो हिंसा, रक्तपात के निवारणार्थ। चन्द्रगुप्त जिस
चरणों में सम्राट नतमसक हैं, जो उस की आज्ञा को पुष्पमाला की तरह स्वीक
करते हैं जिसे चाणक्य जैसे मनीषी का सहयोग और वरदान प्राप्त
और अंत में राक्षस का आशीर्वाद मिले, वह मौर्य भी है तो क्या, राज्य ल
के सर्वथा योग्य है। वह पराक्रमी किन्तु विनम्र, राजाओं पर शासन क

वाला किन्तु गुरु के प्रति अतीव निष्ठावान्। ओजस्वी प्रतिभाशाली विनीत चन्द्रगुप्त जैसे अनायास ही साकार हो गया है। नारी पात्रों का सहेतुक अभाव इस नाटक की एक प्रमुख विशेषता है।

संवाद अपने गुणों से युक्त हैं। एक शब्द भी व्यर्थ नहीं है। स्वगत का यथेष्ट प्रयोग हुआ है। आकाशभाषित भी है। संवाद में पद्यों का प्रयोग तद्युगीन विशेषता है। अभिनय के सभी रूप द्रष्टव्य हैं। मंच की दृष्टि से भी यह सफल नाटक है।

देशकाल व वातावरण के विषय में नाटककार यद्यपि सजग नहीं है तथापि अनेक तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। नाटक का कार्यकाल प्रायः एक वर्ष का है। चतुर्थ अंक में मलयकेतु दुःख प्रकट करता है कि पिता जी का स्वर्गवास हुए दस मास हो गए हैं और अभी तक मैंने कुछ नहीं किया। यह मार्ग शीर्ष की बात है इस से दस मास पीछे गिनें तो फाल्गुण मास आता है जब संभवतः पर्वतक की हत्या हुई थी और उसके बाद चैत्र की पूर्णिमा है जब नटी चन्द्र ग्रहण की बात करती है। कौमुदी महोत्सव कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस के बाद की घटनाओं में दो मास का समय प्रायः लगा होगा।

घटना स्थल तीन हैं, कुसुम पुर, राक्षस का स्थान तथा मलयकेतु का शिविर।

नागरिक जीवन, वर्णाश्रम धर्म, दार्शनिक चिंतन तथा कलात्मक मान्यताओं ने संस्कृत साहित्य को प्रेरणा दी है। मुद्रा राक्षस में भी हम नागरिक जीवन की अनायास ही झलक पाते हैं। लोग प्रायः समृद्ध हैं यमपट दिखा कर भिक्षा मांगने वाला तथा मदारी का खेल दिखाने वाला भी दरिद्र नहीं! जनता राजभीरु थी, कौमुदी-महोत्सव धूमधाम से मनाया जाता था, श्राद्ध की प्रथा थी, वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा थी चाणक्य की सेवा में संलग्न बटु प्रमाण है, सामाजिक जीवन पद्धति और लोकाचार की झलक भी है। सेना पर विशेष ध्यान दिया जाता था, गुप्तचर व्यवस्था सुदृढ़ थी। अमात्य के लिये विद्वत्ता जैसे अनिवार्य थी। चाणक्य अनेक विद्याओं का ज्ञाता व प्रकांड अर्थ शास्त्री था, राक्षस न्यायशास्त्र का ज्ञाता मनोविज्ञानवेता, रणनीतिनिपुण एवम् कलात्मक रुचि-सम्पन्न था।

राजनैतिक दांव-पेंचों के होने पर भी वह आदर्शों का काल था। चाणक्य सादगी, तप, निस्वार्थ भाव, सतर्कता का आदर्श था, राक्षस मैत्री स्वामिभक्ति

का आदर्श, चन्द्रगुप्त गुरुनिष्ठा, विनय का आदर्श, सेवक आज्ञा पालन में तत्पर। दुर्बलताएं भी हैं तो गरिमा को लिये हुए।

धर्म में जन-सामान्य को आस्था थी। प्रारम्भ ही भगवान कृष्ण और शंकर की स्तुति से हुआ है, वृद्धावस्था में काम से ध्यान हटा कर धर्मोन्मुख होना लोग उचित मानते थे, यमराज के प्रति भी आस्था थी, दैव व भाग्य को महत्व दिया जाता था। हरि प्रवोधिनी एकादशी पर अलसाये नेत्रों से जागे हुए विष्णु भगवान की वन्दना, शरद का शम्भु रूप में वर्णन, अंत में भगवान के वाराहावतार की स्तुति से यह स्पष्ट है कि सगुणोपासना में जन-प्रवृत्ति अधिक थी।

नाटक का अंगीरस वीर है। चाणक्य की सिंह गर्जना में, राक्षस और मलयकेतु की उक्तियों में मित्र रक्षा में तत्पर राक्षस की मुद्रा में वीरता द्रष्टव्य है।

वधस्थल पर पुत्र से विदा लेते समय चंदन दास का अपने पुत्र को अन्तिम सन्देश—बेटा, जहां चाणक्य न हो; वहां बसना—एक विचित्र करुणा से ओत-प्रोत है। श्रृंगार के चित्र सर्वथा नहीं हैं। चाणक्य की नीति की तरह विशाख दत्त की कलम भी श्रृंगार के कौमुदी महोत्सव का निषेध करती है। फिर भी राज्य लक्ष्मी और कौमुदी महोत्सव के प्रसंग में यह अवश्य लगता है कि नाटककार श्रृंगार चित्रों में भी सफल हो सकता है।

मूल मुद्राराक्षस में संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी तीनों प्राकृतों का प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गद्य में खड़ी बोली और पद्य में ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। गद्य का बहुत परिमार्जित न होना उस युग का दोष है। गद्य अभी प्रारम्भिक अवस्था में था और भारतेन्दु इस में साहित्य की सभी विधाओं का विकास करना चाहते थे। मूल प्रति से पद्य के कुछेक स्थलों में भावपार्थक्य होते हुए भी मुद्रा राक्षस एक उत्कृष्ट अनूदित रचना है और हिन्दी वाङ्मय इस के लिये भारतेन्दु का सदैव ऋणी रहेगा।

पाडर के कुछ पर्व-त्योहार

प्रियतम कृष्ण कौल

✱

पाडर जम्मू प्रान्त का एक पर्वतीय क्षेत्र है। यह किश्तवाड़ तहसील के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश की सीमा के साथ लगने वाला प्रदेश है। यह क्षेत्र बड़ा दुर्गम है क्योंकि यह चन्द्रभागा नदी द्वारा निस्रित, पथरीली तेज़ ढलवान वाली पहाड़ियों, ऊंची बर्फीली चोटियों और घने ऊंचे द्ेवदारू और चील के बनों वाले क्षेत्र में स्थित है। इसी कारण से बीते समय में यह क्षेत्र बाहर के लोगों के आक्रमण और आंतक से अछूता रहा है उस समय गांव का राणा ही गांव का वास्तविक शासक रहा है। हर गांव का अपना अलग राणा हुआ करता था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जनरल जोरावरसिंह ने इस क्षेत्र को जीत कर हमारी रियासत का एक भाग बना दिया था और तभी से लेकर यह एक नियमित शासन के आधीन है।

इसी क्षेत्र के निवासियों के लौकिक पर्व-त्योहारों में हमें आज भी बहुत सी रुचिकर बातें जानने को मिलती हैं। वर्ष भर में आने वाली प्रायः हर संक्रांती और पूर्णिमा एक बड़ा दिन मानी जाती है और इस दिन परम्परा से निश्चित एक ग्राम में 'जागरा' मेला या विशेष प्रकार का पर्व मनाया जाता है। हर संक्रांति या बड़े दिन का अपना विशेष नाम भी है और विशेष प्रकार का आयोजन भी। इन्हें मनाने के लिए आस-पास के स्थानों से सब लोग इस स्थान पर पहुंच जाते हैं। शरद ऋतु में अपेक्षाकृत अधिक पर्व मनाए जाते हैं। कदाचित इस का कारण यह भी हो सकता है कि ग्रीष्म ऋतु के थोड़े से समय को थोड़ी बहुत कृषी और पशुपालन के व्यवसायों से

भरपूर लाभ लेने में ही लगा दिया जाता है। इसी "नीलम वाले प्रदेश" या पाडर के लोगों के कुछ एक मेलों और पर्वों का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है—

१ डयुश्श—यह पर्व बैसाखी को प्रारम्भ करके तीन दिन तक अठोली में मनाया जाता है। बैसाखी से पहले दिन प्रत्येक गांव में इस का समारम्भ होता हे परन्तु बैसाखी के दिन से केवल ज्वाला माता के मन्दिर में ही यह मेला लगता है। सम्भवतः डयुश्श शब्द धनुश का पर्यायवाची है।

२ जागरा—यह पर्व मेल के रूप में भाद्रपद पूर्णिमा को दुर्गा मन्दिर में मनाया जाता है। मन्दिर का चेला एक काइल के वृक्ष को (जिसे वह उठा सके) या वृक्ष की चोटी को जो कम से कम पांच हाथ लम्बी हो, रात के समय पास के जंगल से काट कर लाता है। सारी रात भजन कीर्तन-गान और नाच होता रहता है। फिर चेला काइल के इस वृक्ष को लेकर एक जलती हुई अग्नि के चारों ओर नाचते-नाचते पांच बार परिक्रमा लेता है। प्रातः काल जब पर्व समाप्त होने जा रहा हो, चेला इस वृक्ष को जिस पर प्रायः हरी टहनियां लगी रहती हैं, जलती हुई अग्नि में एकाएक पांच बार डाल कर निकाल लेता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो व्यक्ति आखिरी बार ऊपर उठती हुई कायल के वृक्ष की चोटी को सब से पहले छू देगा उसके हां उस वर्ष पुत्र जनम, विवाह आदि कोई शुभ कार्य होगा।

३ चज़गे—यह मेला पोष पूर्णिमा को अडोली के मेहराज अथवा मेहनाग मन्दिर में मनाया जाता है। इस में भी रात्री जागरन, भजन, कीर्तन और गायन का आयोजन रहता है जिसे पाडरी में ज़ाठ कहते हैं।

४ चेइट—यह पर्व माघ पूर्णिमा को 'गड़' और 'शो' के ग्रामों में आयोजित किया जाता है और चार पांच देवी देवताओं की पूजा अर्चना होती है।

५ शरेइत—फागुण की संक्रांति को यह पर्व मनाया जाता है। इस पर्व की विशेष बात यह है कि पाडर के समीप ही मिलने वाले एक विशेष प्रकार के बहुत मुलायम पत्थर (Soap Stone or Talk) को लाकर उसे पीसा जाता है। इस चूर्ण को सब लोग लेकर अपने-अपने घरों के चारों ओर

बिखेर देते हैं। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से वर्ष भर दुरात्माओं से उनकी रक्षा होती है।

६ मुठयाग :— इस पर्व का आरम्भ कृषि व्यवसाय के समारम्भ के रूप में चैत्र मास की संक्रांति से होता है। उस दिन कृषि के उपकरणों को निकाल कर उन की पूजा और मुरम्मत की जाती है और उन्हें व्यवहार योग्य बनाया जाता है। पर्व दिन चलता रहता है। इस समय में रात्री जागरण, गाना-बजाना नृत्य और नाटक का आयोजन रहता है।

इन मुख्य पर्वों और त्योहारों के अतिरिक्त भी पाडर में छोटे-मोटे मेले, यात्राएं (जाठ) आदि शरद ऋतु में प्रायः चलती ही रहती हैं जिन में पुरुष और स्त्रियां समान रूप से भाग लेती है। इस इलाके के विवाह आदि भी अधिकतर पोष-माघ-फाल्गुन और चैत्र मास में ही मनाए जाते हैं।

डोगरी तथा राजस्थानी लोक गीतों मे
नारी चित्रण
(एक तुलनात्मक अध्ययन

मञ्जु शर्मा

*

नारी जीवन की कथा मानव की कथा का भाव पूर्ण अंश है। ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्र की रक्षा हित जहां पुरुषों ने प्राण अर्पण किये हैं वहां नारि ने भी पुरुषों के संग-संग भाग लिया है। कन्धे से कन्धा मिला के काम कि है तथा मान और जान के खतरे के समय जौहर करके ऐसे इतिहास निर्माण किया है जिसकी तुलना संसार में नहीं मिलती।

समाज शास्त्र के इतिहास में नारी ने माता, पत्नी, बहिन, कन्या के में मानव इतिहास के भिन्न भिन्न पहलुओं को रंगीन तथा सजीव बनाया है सन्तान के प्रारम्भिक शिक्षण के रूप में नारी का योगदान अद्वितीय है।

पत्नी के रूप में जहां नारी ने पारिवारिक जीवन की गाड़ी का धु के रूप में संगठन किया है वहां गाड़ी को सुचारू रूप से चलाने के आधारभू कर्तव्य को भी निभाया है।

नारी की अपनी परिस्थितियों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। पारिवारि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उतार चढ़ाव नारी जीवन के गौरव त करुणा की तरगें हैं। इतिहास जो प्रायः सम्राटों, राजाओं, महार जाओं नवाबों, सामन्तों का इतिहास रहा है नारी के सम्बन्ध में मौन है। नारी प्रा भोग विलास का साधन रही है। जहां कहीं उस ने अपने को समझा है व

अपनी बुद्धि और स्वभाव सुलभ चतुराई से राज्यों को भी संचालित किया है। लक्ष्मी बाई, अहल्या बाई, दुर्गा बाई, रजिया, चान्द बीबी, विजय लक्ष्मी पंडित सरोजिनी, इन्दिरा गांधी, इस के ज्वलन्त उदाहरण हैं। सुखों, दुःखों, कठिनाइयों, सुविधाओं, प्रेम, घृणा, क्रिया प्रतिक्रिया के ताने बाने से बुना हुआ नारी का जीवन विचित्र ही सौंदर्य और अनोखी छटा लिए है। विद्वान लेखकों और पैनें इतिहासकारों ने नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया है। परन्तु इन धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं के नीचे नारी हृदय का पहलु भी है जिस का वर्णन लब्धप्रतिष्ठ महान कवियों ने अपनी अमर कृतियों में करके अपने आप को धन्य किया है और महाकाव्यों का निर्माण किया है।

लोक गीतों की व्याख्या

जीवन के कुछ ऐसे पहलु भी हैं जो व्यक्तिगत मनोभावों, पारिवारिक स्थितियों और सामाजिक समस्याओं की देन होते हैं। जिन की ओर इतिहाकारों और सामाजिक नेताओं का ध्यान नहीं जाता। नारियां जब कहीं उत्सव या धार्मिक कृत्यों, जन्म, मुण्डन, विवाह के अवसरों पर एकत्रित होती हैं तो ढोलक के साथ नारी हृदय के वे उद्गार सुनने को मिलते हैं जिन्हें विद्वान लेखकों की लेखनी चित्रित नहीं कर पाती। वे सामूहिक कृतियां जिन के उद्भव का स्थान पता नहीं, जिन को स्वर ताल देने वाले का पता नहीं, लोक गीत कहलाते हैं। यही वास्तव में जन अभिव्यक्ति है। हृदय की अछूती उमंगों का प्रदर्शन, शृंगार वात्सल्य, मिलन वियोग तथा अन्य घरेलू परिस्थितियों की अभिव्यक्ति जैसी लोक गीतों में होती है वैसी स्वभाविकता, स्पष्टता, छंदोबद्ध काव्यों की रूढ़ियों में उभर नहीं पाती। समूह में से एक नारी कण्ठ से एक टप्पा निकला, सब ने दुहराया, फिर दुहराया इतने में दूसरी ने अपनी अनुभूति की तान छेड़ उसी रंग में पेश कर दी। फिर तीसरी ने अपना योगदान दिया। इस प्रकार समय और अनुकूलता की कृपा से हृदय का, पारिवारिक जीवन का, समाज की क्रिया प्रतिक्रिया का, वह अछूता पहलु सामने आ गया जो एक रिसर्च स्कालर समय, धन तथा धैर्य व्यय करके भी शायद उस सूक्ष्म रूप में न प्राप्त कर पाता।

लोक गीत भावावेग का वह सरल और निच्छल प्रवाह है जो कृत्रिमता से अछूती अभिव्यक्ति शैली में प्रकृति की स्वभाविक कला की सरसता ले कर

ग्राकाश की इन्द्रधनुषी रंगीनियों की तरह अपने ग्राप ही स्वत: ही बह
चलता है। तभी तो लोक साहित्य विद्वानों से अधिक अनपढ़ भोले और सी
सादे व्यक्तियों विशेष कर नारियों के मनोरंजन की वस्तु है। इन लोक गीत
में स्वच्छन्द हृदय के स्वभाविक उदगार पाये जाते हैं जो कि कृत्रिमता से मुक्त
हो कर लोक प्रचलित हैं। इन लोक गीतों में रसमय जीवन का अथाह समु
लहराता रहता है, जो कि जन जीवन में ग्रालोकिक सौन्दर्यपूर्ण माधुर्य
सृजन करके सुख और शान्ति प्रदान करता है।

ग्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि भारतीय जनता का सामान्य स्वरू
पहचानने के लिये पुराने परिचित ग्राम गीतों की ग्रोर ध्यान देना ग्रावश्यक है
केवल पण्डितों द्वारा प्रदर्शित काव्य परम्परा का ग्रनुशीलन ही काफी नहीं है
जब जब शिष्टों का काव्य पण्डितों द्वारा बन्ध कर निश्चेष्ट ग्रौर संकुचित हो
तब तब उसे सजीवता ग्रौर चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बी
स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भाव धारा से जीवन तत्व ग्रहण करने
ही प्राप्त होगा। (रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् २०
पृ०—७००-७०१)

लोक साहित्य तथा लोक कला की उपेक्षा सदैव, सभी युगों में, शा
वर्ग द्वारा हुई है। शासक वर्ग ने सदैव लोक कला के गर्भ से उत्पन्न शि
साहित्य ग्रौर शिष्ट कला को ही प्रश्रय दिया है। प्राय: सभी विद्वान
मत हैं कि समस्त शिष्ट साहित्य ग्रौर शिष्ट कला की उत्पत्ति लो
साहित्य ग्रौर लोक कला से हुई है। लोक साहित्य का ग्रौर लोक कला
विकास क्रम कभी रुका नहीं। प्रत्येक युग में जन-साधारण के सामाजिक जी
की ग्रभिव्यक्ति इसी के माध्यम से होती रही। सच तो यह है कि लोक गी
के भीतर छिपे भावों की व्यापकता ही, इन गीतों की तथाकथित शिष्ट गीतों
ग्रलग एक सत्ता स्थापित कर देती है। उस में पुनरावृत्तियों भिन्नताग्रों,
विभाजनों के लिये सर्वत्र दरवाजा खुला रहा है ग्रौर खुला रहेगा क्योंकि लो
कलाकार ग्रथवा लोक गीतकार सदैव इस बात के लिये प्रस्तुत रहा है कि
ग्रपने ग्राप को केवल कुछ विशेष नियमों, रूढ़ियों ग्रथवा मान्यताग्रों से
बांधे। हम ग्रपने लोक गीतों में भौतिक जीवन से ग्राध्यात्मिक जीवन त
की दौड़ को बराबर ग्रनुभव करते हैं। मेले के गीतों से, शृंगार रस से
ग्रभिनयों से एवं कृष्ण ग्रौर राम लीलाग्रों तक, युद्ध की चुनौतियों से भ

परक भजनों तक हम लोक मानस के इन कलाकारों और गायकों की पहुंच का प्रमाण पाते हैं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक गीतों की प्राचीनता और उन के द्वारा लोक मानस के संस्कार के सम्बन्ध में जो बातें यहां कहीं वे अकाट्य हैं। जब से मानव समाज है तभी से लोक गीतों का भी इतिहास है। प्रसिद्ध विद्वान विलियम्स ने लोक गीतों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात कही है कि लोक गीत न नया होता है न पुराना। वह तो उस जगली पेड़ की तरह होता है जिस की जड़ें अतीत की गहराइयों में घुसी होती हैं, मगर जिस में नित नई पत्तियां, नए फल निकलते रहते हैं। विलियम्स महोदय ने जो बात कही है वह स्वयं प्रमाणित है, स्वयं सिद्ध है। यही कारण है कि हम मैथिली, मराठी, पंजाबी, मालवी, भोजपुरी, राजस्थानी, अवधी, डोगरी गीतों में इतना साम्य पाते हैं। यह लोक गीतों में व्यक्त भावनाओं की सार्वभौमिकता तथा सार्वकालिकता ही तो है जिस के कारण हर युग में हमारे लोक गीतों का सन्देश देश के भीतर के सारे प्रान्तों में ही नहीं वरन् विदेशों में भी पहुंचा। उसी प्रकार जिस प्रकार पंचतत्र की कहानियां अरब और योरोपिय देशों की भाषाओं में अनूदित होती हुई इन्गलैंड पहुंचीं। अजता की चित्रकला उतरी पश्चिमी चीन की गुफाओं तथा मन्दिरों में पहुंची, भारत की मूर्ति कला, नृत्य कला, अभिनय कला ब्रह्म देश, मलय प्रदेश, स्याम आदि सुदूर प्रदेशों तक फैल गई।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के कथनानुसार 'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है, उस में भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ सचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। सच तो यह है कि लोक सम्पर्क के बिना सब शास्त्र अधूरे हैं। जो शास्त्र लोक के साथ नहीं मिला वह बुद्धि का धुलावा है। लोक साहित्य के संकलन से अनेक लाभ होंगे। श्री राम नरेश त्रिपाठी जी ने बहुत पहले कहा था सब से बड़ा लाभ यह होगा कि कण्ठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध कर सकेंगे। दूसरा हम को (लोक) मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी। जिन को हम ने मूर्ख समझ रखा है, उन के मस्तिष्क से ऐसे गीत निकले हैं जिन पर हिन्दी के कितने ही कवियों की रचनायें निछावर की जा सकती हैं। हिन्दी की प्राचीन और नवीन शैली पर इस का प्रभाव पड़ेगा। हम गीतों में वर्णित अपने देश के भिन्न भिन्न रस्म-रिबाजों और रहन-सहन से

परिचित हो जायेंगे तथा हिन्दी साहित्य में नये नये मुहावरों, कहावतों और नवीन शब्दों की बृद्धि होगी।

लोक साहित्य केवल साहित्य नहीं है वह साहित्य के अतिरिक्त इतिहास पुराण व्याख्यान सभी कुछ है। देवेन्द्र सत्यार्थी ने कहा है, बहुत से लोक गीत जो पहली दृष्टि में बहुत कवित्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते थोड़ा गहराई में जाने से समाज शास्त्रीय अध्ययन की अद्‌भुत सामग्री साबित होते हैं। इन सब पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित रूप रेखा के आधार पर किया जायेगा। संक्षिप्त रूप रेखा इस प्रकार है :—

१ परम्परा :-

परिस्थितियां जिन से नारी को जूझना पड़ा है।

(क) अभिशाप सन्ताप बनाने वाली स्थितियां।

(ख) सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियां।

२ मायके में :-

(क) कन्या जन्म।

(ख) शैशव।

(ग) किशोरावस्था।

(घ) विवाह समारोह।

३ ससुराल में :-

दाम्पत्य जीवन।

बहु के रूप में।

मां के रूप में।

सास के रूप में।

देवरानी, जेठानी के रूप में।

४ व्यवसाय वर्ग के आधार पर।

५ नारी का समाज में स्थान :-

धार्मिक आधार पर।

पारम्परिक आधार पर।

सांस्कृतिक आधार पर।

डोगरी गीतों में नारी

वैसे तो लोक गीत जन-जीवन की दैनिक अनुभूतियों, सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक राजनैतिक व गार्हस्थ्य जीवन की साधारण एवं असाधारण परिस्थितियों को संजोये अबोध गति से चलते रहते हैं और एक पीढ़ी के सांस्कृतिक धन को दूसरी पीढ़ी के सुपुर्द करते चलते हैं फिर भी लोक-गीतों को नारी जाति की विशेष सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में मानना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि नारी जो सृष्टि की रीढ़, विश्व की सर्वोपरि महत्वपूर्ण प्राणी है, इन लोक-गीतों में अपनी कथा आप कहती है। हर प्रान्त और देश में अपने लोकगीत रहते हैं और उनमें अधिकांश नर-नारी जीवन सम्बन्धी संयोग-वियोग, जन्म-विवाह, घृणा-द्वेष, वैर-प्रेम और उस की सामाजिक मर्यादाओं व बन्धनों और विद्रोहों के दैनिक इतिहास का चित्रण और समावेश रहता है। डोगरी तथा राजस्थानी लोकगीतों में नारी जीवन के चित्रण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न स्थितियों और भावनाओं का बड़ा सुन्दर और मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। साथ ही साथ डोगरी और राजस्थानी लोक-गीतों में नारी जीवन सम्बन्धी सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक कृत्य, विवाह तथा जन्म समारोह आदि बहुत से रीति रिवाज आपस में मिलते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन डोगरी राजस्थानी

डोगरी लोक गीतों में नारी जीवन की बड़ी सजीव और मार्मिक झांकी मिलती है। जन्म से लेकर मरण तक पारिवारिक जीवन के विविध पहलू, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के कारण नारी जीवन को अभिशाप और सन्ताप बनाने वाली स्थितियां, ऐसी विषम स्थितियों में भी नारी हृदय की पत्नी, बहिन, मां, पुत्री के रूप में अभिव्यक्ति, कोमलता तथा सूक्ष्म भावों का प्रदर्शन प्रेम और कर्तव्य में संघर्ष, सामाजिक बन्धनों की विवशता, आर्थिक जटिलता का दुष्प्रभाव, सास और ननद के साथ खैंचतान, देवर जेठों का चंचल और गम्भीर वातावरण, मायके की याद परिवार की जिम्मेदारियां इतने विभिन्न पहलू हैं कि इन की विविधता और अनेकता पर आश्चर्य होता है।

राजस्थान के साथ डुग्गर के क्षत्रिय वर्ग का विशेष सम्पर्क होने के कारण राजस्थान के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन के साथ डुग्गर जीवन का विशेष सामंजस्य स्थापित हो गया है। पारस्परिक विवाह सम्बन्ध आदान प्रदान ने बहुत से रीति रिवाजों, में जहां समानता और सामंजस्य ला दिया

है वहां बहुत से नारी चित्रण सम्बन्धी लोक गीतों में भी समान
मिलती है।

डोगरी लोक गीतों में नारी की भिन्न-भिन्न भावनाओं का मुंह बोल
चित्रण हुआ है। इस में सन्देह नहीं कि डोगरी में कारकां, बारां, बिसन
भेटां इत्यादि कई वीर गाथात्मक धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुभूति
सम्बन्धित लोक गीत अपना विशेष महत्व रखते हैं। पर इन का स्थान
लोक गीतों से भिन्न है जो जन-साधारण की दैनिक अनुभूतियों से सम्बन्धि
हैं। कन्या की विदा वेला में जब रोती हुई स्त्रियां रुंधे कण्ठ से डुग्गर
नारी जीवन की सामाजिक विवशता की करुण गाथा इन पंक्तियों में बार-ब
दुहराती हैं —

"बोल नी मेरिये बागें दिएं कोयले,
बाग तजी हुण कां चलिएं।
बावल मेरे धर्म जो कीता,
धर्में दी बद्धी दी मैं चलियां।"

तो कौन ऐसा पत्थर हृदय होगा जो विह्वल न हो उठेगा। इन
की अनुभूत्यात्मक समानता आश्चर्यजनक है। राजस्थान में भी डुग्गर की
भांति स्त्रियां बेटी की विदा के समय गीत गाकर, सजल नेत्रों से
कन्याओं के सिर पर हाथ फेर कर, करुण रस से अपने आस-पास के वाता
को भिगो देती हैं। वियोग के वे क्षण जब कि बेटी घर से विदा होती
विरह व्यथित आत्मीयजनों की आंखों में आंसुओं की बरसात ला देते हैं।

म्हें थानों पूछां म्हारी धीवड़ी
म्हें थानों पूछां म्हारी बालकी
इतरो बाबे जो रो लाड़ छोड़-छोड़ सिध पाच्छा।
म्हें रमती बाबोस री पौल
म्हें रमती वाबोसारी पोक्त
आयो सगेजी रो खूब रो, गायजमल ले चाल्यो॥

कितना भाव साम्य है इन दोनों गीतों में। डोगरी लोक
में राजस्थानी लोक गीतों की तरह देश प्रेम और कर्तव्यपराय
की प्रेरणा देने वाली नारियों का चित्रण कम ही मिलता है।
इस का कारण डुग्गर की सामाजिक व्यवस्था और नारी का पिछड़

ही है। उस का पति युद्ध में गया है, वह अशिक्षित है पत्र नहीं लिख सकती। पटवारी से पत्र लिखवाने के लिये उस की चिरौरी करती है —

ए पटोवारी मिगी खत नेईयों लिखी दिंदा
सौ सौ करनियां छन्दा,
लगदा ई मिगी तेरा मन्दा
नामा कटाई घर आई जा सपाइया,
लगदा ई मिगी तेरा मन्दा

साथ ही साथ वह ईश्वर को भी कोसती है जिसने मानव में युद्ध की भावना पैदा करके सामाजिक व्यवस्था में सेना को एक स्थाई और आवश्यक संस्था के रूप में खड़ा कर दिया है।

कैसी (क्यों) बनाई रामा जगे दी ए चाकरी ॥

राजस्थानी लोक गीतों में वीर नारियों के चरित्र का वर्णन अधिक पाया जाता है। राजस्थानी नारी वीर रमणी है वह तो कायर पुरुषों के प्रदेश में भी रहना पसन्द नहीं करती। नाइन से कहती है आज पैरों में मेंहदी मत लगा कल अगर मेरा पति युद्ध में तलवार की धार पर चढ़ जाय तो खूब मेंहदी रचेगी

नायण आज न मांड पग
काल सुणी जे जग
धारां लागे जो धणी
तो घण दीसे रंग,

पतिव्रता और सती धर्म का पालन राजपूत रमणियों का आदर्श रहा है। यहां उसी सती धर्म के गौरव का वर्णन है—

सूर सिरोमणि साहिबो, ई कारण आई ह,
वरतां धारा पीव ने, बरजो मत बाईह,
आली चंचल उरवसी, ठाकुर वर टोल,
हूं पहला ही उरवसी कर फेरां के कोल ॥

पति के मरने के बाद वह जीवित नहीं रहना चाहती।

सांच कहूं सुण सेखजी
धण बाल्हो धण जीव
जाप्र अकेलो धण जदै किण कन राखुं जीव ॥

युद्ध से भाग कर आये हुए पति की कायरता और निर्बलता के लि
धिक्कार देती हुई कहती है—

घर नहीं आता भाज कर
मरता दुसहा मार
हूं तो थां लारा हुलस
बलती ढोल बजाय ।

डोगरी लोक गीतों में ऐसे चित्रों का अभाव है पर जहां तक नारी के
सुलभ संस्कारों का सम्बन्ध है वह डोगरी लोक गीतों में पूर्ण रूप से उभरे है
वह कन्या के रूप में अत्यन्त संकोचशील स्वभाव की है और उमर आने
संकेतों के द्वारा वर प्राप्ती की इच्छा प्रकट करती है—

ने बेटी चन्नन दे ओले ओले क्यों खड़ी
मैं ते खड़ी आं बाबल जी दे पास
बाबल वर लोढ़िए
वर भी ऐसा वैसा नहीं राम जैसा वर ताकि
वह पंगूड़े बैठी हुक्म करे ।
मेरा वर होवे श्री राम
छोटा देवर लक्ष्मण होवे
मेरी सास होवे मात कौशल्या
सौरा दशरथ होवे ।
मैं ते मंगनी आं जुधया जी दा राज
पंगूड़े बैठी हुकम करां ।।

ऐसा ही एक गीत राजस्थान की कन्या भी गाती है—

मैं ते बर मांगू सिरी राम,
देवर छोटे लक्ष्मन से
मैं तो मांगू कौसल्या सी सास
ससुर राजा दसरत से ।।

बेटी के भविष्य की मंगलकामना सार्वभौमिक है तभी तो इतना सा
है दोनों गीतों में। डोगरी लोक गीतों में सुहाग और घोड़ियों में वर
राम का प्रतीक मान कर ही सम्बोधित किया गया है। वह स्वयं तो पति
का आदर्श उपस्थित करती ही है। बेशक उसके जीवन में कई अभाव

प्रलोभन हैं पर उसके ऊंचे संस्कार, सामाजिक मर्यादा और दोनों कुलों की आन उसे पूर्ण रूप से सम्भाले हैं। निम्न गीत में डुग्गर के सामाजिक अन्याय और नारी के स्वाभिमान का बड़ा बोलता चित्रण हुआ है—

खूए पर खड़ोतिए गोरिए कैंत होई ऐं दिलगीर
जां तेरी सस्स लड़ाकड़ी गोरिये
जां तेरे मा पै नी दूर।
आप बडी वर निकड़ा बावल
मा पेग्रां दित्ता लड़ लाई वो।
छुड़ी दे तूं निकड़े दा साथ
चली पौ छपाइयां दे नाल वो
सुन्नेग्रां करां तुगी पीलड़ी वो
मोतिया जड़त जड़ाई ग्रो।
अग्ग लगै तेरे सोनड़े वे बीबा,
मोतियां नदियां रड़ाई दे।
अज्ज निक्का कल बड्ड़ा,
मेरी दिन, दिन जोत सोग्राई वे।

माता पिता ने भरपूर जवानी में एक लड़की की शादी कम उमर वाले लड़के से कर दी है। पानी भरने गई हुई युवती विचार मग्न खड़ी है कि एक सुन्दर जवान पुरुष उसका कारण जान लेने पर सोने मोतियों के प्रलोभन देकर फुसलाना चाहता है पर वह डुग्गर के महान संस्कारो में पली युवती उसे बुरी तरह ठुकराती है।

पति के वियोग का चित्रण डुग्गर और राजस्थान के लोक गीतों में खूब हुआ है।

डुग्गर की एक विरहिन कहती है—

रातां न्हेरियां म्हीने काले,
जिन्दे घर कैंत तिनां दीपक वाले।

और पति घर नहीं तो वियोगिनी को चैन कैसे।

निक्कियां-निक्कियां भड़ियां लग्गियां
कैंत गेग्रा परदेस ग्रो
पले २ उट्ठनियां, उट्ठी २ तकनियां
दिक्खी २ रस्ता पक्की गईयां अक्खियां।

त्यौहार पर्व आते हैं लेकिन बिना पति के सब बेकार हैं—

"फग्गन म्हीने माए होली आई तुस रेह परदेश,
असें रंग बिन गोआई।"

और जब आकाश में काले-काले बादल उमड़ते हैं तो उस का मन उन से भी ऊंचा उठ कर आवाजें देता है।

"बदलुएं कोला वी उच्चा होई-होई
मन तुगी देआ दा आले॥

पति के परदेश जाने पर वह कलपती है और स्पष्ट कह देती है—

"मौत चंगी ते बच्छोड़ा खुट्टा,
लग्गा फट्ट तलोआरी।

बिछोड़े से तो मौत अच्छी बेशक वह तलवार के एक वार में हो। साथ ही साथ अपना भय भी स्पष्ट कर देती है कि तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे यौवन रूपी वृक्ष की देखभाल कौन करेगा ऐसा न हो कि लोगों के नयन पंछी आ-आ कर उस की डालों पर झूलने लगें—

"जोबने दा बूटा झुल्ली २ पौंदा,
ते बेई जन्द नजरें दे डार॥"

(एक विद्वान की दृष्टि से यह पंक्ति अनुपम और किसी भी साहित्यिक गीत के काव्य सौन्दर्य की तुलना में श्रेष्ठ है) डोगरी लोक गीतों में मिलन गीतों की अपेक्षा वियोग सम्बन्धी गीतों की संख्या अधिक है पति के परदेश जाने पर वह वियोग में जी भरकर रो भी नहीं सकती और फिर सास, ननद के ताने न सुनने पड़ें, अतः चूल्हे में गीले उपले लगा कर धूएं का बहाना बना कर रोती है—

गिल्ले गोटे चुल्ली ओ धुखानी
रोनी आं धूएं दे पज्ज ओ प्यारे॥

पति के वियोग में बार-बार कहती है—

तेरे बाज चन्नां ब्हार सुन्नी २ रौह्नी,
बागे दी बहार दौं दिनें दी परोहनी।

बादल जब आकाश पर छा जाते हैं, काली २ घटायें उमड़-घुमड़ कर आती हैं उस समय विरह व्यथित नारी का मन बादल से भी ऊंचा उठ कर अपने प्रियतम को आवाज़े लगाता है और फिर यह भय भी है कि यौवन

रूपी वृक्ष पर नजर पक्षियों के झुंड न बैठने लग जाएं और फूलों व बागों की बहार तो मेहमान है। पति के बिना सब सूना लगता है।

राजस्थानी लोक गीतों में भी डोगरी गीतों की तरह मिलन सम्बन्धी गीतों से वियोग सम्बन्धी गीतों की सख्या अधिक है। मरूप्रदेश की तपतपाती भूमि पर जब वर्षा की सरस एवं शीतल बूंदें पड़ती हैं उस समय विरहिनी अपने पति के वियोग में तड़प उठती है। शीतल बूंदें आग में घी का काम करती हैं। उस समय वह कह उठती है—

"लागै रै भंवरजी ! पेहूडा री छींटा
रावली कटारी रा घाव
पधारो पाखण रा रसिया
पेलां गोऊ वाटडली।"

अर्थात् हे प्रिय ये मेह के छींटे तुम्हारी कटारी के घावों से भी असहनीय हैं। हे प्रिय प्रियतमा तुम्हारी बाट जोह रही है।

प्रियतम से मिलने को जब उस का मन बहुत उतावला हो जाता है तो वह कहती है—

मेरा मन मारु जी मिलवाने
जेठ अषाड आस हूं काट्या तो सावण आयो झुरसाने
लिख परवाणूं म्हारे मारु जी ने देस्यां।
तो एक बार आवो मिलवाने

यह गीत विरह की भावनाओं से ओत प्रोत हैं। ज्येष्ठ और आषाढ़ महीने मिलन की आशा में बिता दिये हैं अब सावन आ गया है। मैं एक पत्र लिखूंगी हे प्रियतम तुम मुझ से मिलने आओगे। मेरा मन मिलने को उतावला हो रहा है।

इस प्रकार अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की आश्चर्यजनक समानता इन गीतों में दिखाई देती है। नारी जीवन तो अनंत अनुभूतियों की रगस्थली है और उन की अभिव्यक्ति भी अनंत प्रकारों से हुई है आवश्यकता है देश देशांतर के लोक गीतों के तुलनात्मक अध्ययन की।

राष्ट्रीय एकता

डॉ० निज़ाम उद्दीन

*

संसार में ऐसे देशों की संख्या कम ही है जहां जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भा
प्रान्त आदि का अद्भुत समन्वय इस रूप में परिलक्षित होता हो जिस रूप
भारत में है। परिणामतः भारत में ही अन्य देशों की अपेक्षा राष्ट्रीय एकता
महत्व अत्यधिक है। रूस तथा चीन जैसे विशाल देशों में एक ही विचार धा
प्रवहमान है। अति चमक-दमक वाले देश अमरीका में अवश्य भारत सदृ
वैभिन्नय विद्यमान है, फिर भी जितना विषमता पूर्ण वैभिन्नय भारत में सह
वर्षों से देखने को मिलता है (जो अद्यावधि विद्यमान है) वह अमरीका में भी
रूप एवं मात्रा में कहां ? यहां हिन्दू, मुसलमान ही नहीं, सिख, ईसाई, पार
बौद्ध, जैन, वैष्णव, शाक्त, मद्रासी, बंगाली, पंजाबी, जाट, गूजर, अहीर, ब्राह्म
चमार, तेली, धोबी आदि असंख्य जातियां और सम्प्रदाय हैं, धर्म और प्रान्त
भाषा और बोलियां हैं। यहां तक कि रहन-सहन, खान-पीन, वेश-भूषा, री
रिवाज सभी में भू-अम्बर का अन्तर है और यह सब भानमती के पिटारे
समान भारत में भरे पड़े हैं और यहां हम यह कहते गौरव का अनुभव करते
कि भारत इस व्यापक वैभिन्नय में भी ऐक्य का मंगल दीप प्रज्वलित किए है
और विषय की गहराई में अवगाहन कर विचार किया जाय तो इस में भारत
समन्वयवादी भावना, औदार्य एवं भावात्मक ऐक्य के मांगलिक तीर्थराज के द
होते हैं। शक, हूण, मुगल, पठान, डच, फ्रांसीसी, अंग्रेज बहुत सी जातियां
आईं और अधिकतर उन में से भारत की उदारशीला प्रकृति में आत्मसात
गईं। अपने मूल देश से सम्बन्ध-विच्छेद कर भारत को ही अपना देश सम

यहां की विचार धारा में घुलमिल गईं। ऐसी स्थिति में देश की एकता, अखण्डता की सुरक्षा का भार प्रत्येक भारतवासी के कधों पर स्वतः आ पड़ता है। एक स्वाधीन देश के रूप में भारत में राष्ट्रीय एकता की निरन्तर संपुष्टि होती रहना नितान्त आवश्यक है।

राष्ट्रीयता ही राष्ट्रीय एकता की भावना का संपोषण कर सकती है, लेकिन सच्ची राष्ट्रीय भावना को राजनीति की कर्दम से बचाना होगा, क्योंकि राष्ट्रीय भावना में राजनीति का नहीं, नैतिकता का पक्ष अधिक रहता है। अतः राष्ट्रीय भावना अथवा राष्ट्रीयता एक नैतिक भावना है, और जब हम नैतिकता का चश्मा चढ़ा कर विभिन्न प्रान्तों, सम्प्रदायों, जातियों आदि पर दृष्टिपात करें तो हमें पार्थक्य के स्थान पर ऐक्य तथा समन्वय ही दृष्टिगोचर होगा, और सभी के प्रति, बिना किसी राग-द्वेष के मंगल-कामना रहेगी—"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।" हमारे अन्दर यदि नैतिक बल हो, और समन्वयवाद, जो मानवतावाद का रूपान्तर है, हो तो निश्चित रूप से सच्ची राष्ट्रीयता की उपलब्धि सम्भव हो सकेगी। जैसे जर्मन लोग जर्मनी के लिये, जापानी जापान के लिये, ब्रिटिश इंगलैंड के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने को आठ पहर तत्पर रहते हैं उसी प्रकार की वफादारी और उत्सर्ग की भावना भारतवासियों में आ जाये तो कोई कारण नहीं हम भी एशिया के विकसित देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेंगे। गांधी जी ने ऐसी ही सच्ची राष्ट्रीयता का आवाहन किया था—"हमें यह सारी बातें भुला देनी हैं कि "मैं हिन्दू हूं तुम मुसलमान हो" या मैं गुजराती हूं, तुम मद्रासी हो। "मैं और मेरा" को हमें भारतीय राष्ट्रीयता की भावना के अन्दर डुबो देना है।" अपने देश के हितार्थ सर्वस्व त्याग की भावना कितनी उन्नत कल्याणमयी है! भुवनेश्वर दत्त ने क्या खूब कहा था :—

न इज़्ज़त दे, न अज़मत दे, न सूरत दे, न सीरत दे।
वतन के वास्ते यारब मुझे मरने की हिम्मत दे॥

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कोई देश संकटापन्न स्थिति में होता है, उस की संस्कृति-सभ्यता पर कुठाराघात किया जाता है तो देशवासियों के अन्दर सुषुप्त राष्ट्रीयता जाग उठती है और फिर धर्म, जाति की सभी संकीर्णता एक ही झटके में विच्छिन्न हो जाती है। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा राम मोहन राय के दृढ़ नैतिक बल एवं सत्प्रयासों से देश

में एकता की चेतना उजागर हुई, जिस के बल पर भारतवासियों में धर्मगत, जातिगत, रूढ़ीगत संकुचित भावनाओं से ऊपर १८५७ ई० की महाक्रान्ति ने जन्म लिया और उस महाक्रान्ति में राष्ट्रीयता की भावना के ज्वालामुखी के पर्वत के समान विस्फोट हुआ। देश के सभी वर्ग-सम्प्रदाय-मतावलम्बियों ने सिर पर कफन बांध कर सक्रिय भाग लिया। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफी एव रामकृष्ण मिशन सुधारवादी संस्थाओं के प्राविर्भाव ने जन-मानस में राष्ट्रीयता अथवा देशाभिमान की भावना को प्रबलतर बनाया और आगे चल कर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय एकता के साथ साम्प्रदायिक एकता की सद्भावना को सम्मिलित कर उसे अधिक सुदृढ़ बनाया। उन्होंने १९२१ में राष्ट्रीय स्तर पर—देश व्यापी सत्याग्रह आन्दोलन के द्वारा सभी जातियों, मतों, सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में संग्रथित किया, उनमें भ्रातृत्व की भावना का बीज वपन किया। क्या भारतवासी गांधी जी के इस सद्प्रयास को कभी विस्मृत कर सकते हैं जिस में उन्होंने चिर उपेक्षित, अनादृत, विघृणित अस्पृश्य समझे जाने वाले वर्ग को 'हरिजन' के नाम से सम्बोधित कर उसे समाज में अभिवांछित आदर दिया, समाज में एक समादरणीय स्थान प्रदान करने का प्रयत्न किया। लेकिन आज हमारे लिए यह कलक की बात है कि अभी तक हम इतने संकीर्णबुद्धि, रूढ़िवादी बने हुए हैं कि आज भी उन तथाकथित 'हरिजनों' के साथ अमानुषिक व्यवहार कर रहे, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार, उन की झोंपड़ियों को आग लगाना, बच्चों का कि अपहरण न जाने कैसे अभद्र, अशिष्ट, असभ्य, अमानवीय व्यवहार कर क्या स्वयं अपने को कलंकित और गांधी की आत्मा को अशांत, व्यथित नहीं कर रहे ?

आज हम भारत को एक 'सेक्यूलर राज्य' कहते हैं। 'सेक्यूलर' का अर्थ धर्महीनता नहीं है वरन् 'सर्वधर्म समभाव' है। गांधी जी को भी यही अर्थ मान्य था। एक धर्म और एक राष्ट्र का नारा लगाना भारत जैसे वृहद देश के लिए किसी भी रूप में श्रेयस्कर नहीं, क्योंकि यहां एक धर्म नहीं अनेक धर्म हैं और सभी के 'समभाव' होने में सकल देश का कल्याण सन्निहित है। हमारे सौभाग्य की बात है कि देश के कर्णधारों में से आज तक कोई ऐसा नहीं हुआ जिस ने एक धर्म और एक राष्ट्र की हिमायत की हो। हमारे देश के सेक्यूलर रूप की प्रशंसा कहां नहीं होती। स्वयं हमारे निकटतम पड़ोसी (और निकटतम शत्रु भी) पाकिस्तान, जहां की जनता इसी एकता और

सेक्यूलर जनित राष्ट्रीयता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करती है। उर्दू दैनिक 'नवाए वक्त' के विशेष प्रतिनिधि श्री शरीफ फारूक ने अपने शिमला-प्रवास के दौरान (शिमला-समझौता के अवसर पर) कहा था--

"मैंने छोटा शिमला के कस्टमी मुहल्ले में मंदिर के पुजारी से भी बातें की हैं और माल रोड से ऊपर 'रिज़' पर जहां महात्मा गांधी की पीतल की मूर्ति खड़ी है, उस से डेढ़ सौ फुट की ऊंचाई पर एक बेंच पर बैठे पहाड़ी को भी कुरेदा है, मुझे सिक्खों से भी बातचीत करने का अवसर मिला है, लोअर बाज़ार की मस्जिद में भी गया हूं। साधारण दुकानदारों से भी बातचीत की है और सरकारी अफसरों से भी। मैंने एक चीज़ सब में बराबर तौर पर महसूस की है और वह है भारतीय जनता की एकता, राष्ट्रीय मान का अहसास और राष्ट्रीयता की भावना। अर्थात् ५० करोड़ ५५ लाख प्राणियों की मिली-जुली कौम में एकता की आत्मा। मुझे पांच दिनों में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जिसने श्रीमती इन्दिरा गांधी के विरुद्ध कुछ कहा हो या यह कहा हो कि उन्होंने फ़लां-फ़लां बेईमानी की है। आज इन्दिरा गांधी भारत की एकता का आदर्श प्रतीक हैं।"

जैसे चांदी को पीटने से उस के सुन्दर सुकोमल उपयोगी वर्क बनते हैं उसी प्रकार राष्ट्र पर जब वाह्याक्रमण की करारी चोट लगती है तो उसमें एकता की कल्याणप्रद स्पृहणीय भावना उद्बुद्ध होती है। चीन तथा पाक-आक्रमणों के संकटमय समय में भारत में ऐसा ही हुआ। अभी गत वर्ष दिसम्बर में हम ने इसी राष्ट्रीय एकता के अपरिमित बल द्वारा पाकिस्तान पर करारी ज़र्ब लगाई जिसे वह जल्दी से भुला नहीं सकेगा, इसी राष्ट्रीय एकता का संबल प्राप्त कर ही नए राष्ट्र 'बंगला देश' का उदय हुआ। यदि देशवासियों में राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रीय एकता का किंचित्मात्र अभाव होता तो न तो हम बंगला देश की सहायता कर पाते और न अपनी सुरक्षा ही।

यहां उन कारणों पर भी थोड़ा दृष्टिपात करना आवश्यक है जो राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं, और हमें— प्रत्येक भारतवासी को, चाहिए कि उन कारणों का मूलोच्छेदन करने का दृढ़ संकल्प लें। साम्प्रदायिकता की भावना राष्ट्रीय एकता में सब से अधिक बाधक तत्व है। चीन आक्रमण से पूर्व हम जबलपुर आदि के साम्प्रदायिक दंगों से निपट कर राष्ट्रीय एकता की भावना को फैलाने

का प्रयत्न कर रहे थे, बीच में आक्रमण से वह भावना स्वतः उत्पन्न हो गई।
परन्तु साम्प्रदायिकता की कड़ी रोक थाम करना अनिवार्य है, वह ऐसा एक दूषित
रक्त है जिस के संचार से भारत चिर रोगग्रस्त हो विनाश के गर्त में गिर
सकता है। देखिये कितने दुख की बात थी कि जिन दिनों हम गांधी-जन्म
शताब्दी मना रहे थे उन्हीं दिनों देश के कुछ भागों में दो सम्प्रदाय एक दूसरे के
रक्त के प्यासे हिंसक पशु जैसे भयंकर लग रहे थे और मार काट में लगे थे।
बादशाह खान ने उस समय हमें हमारे ही घर में इस घिनोने कुकर्म पर लज्जित
कर दिया था। यह तो देश की नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ठीक किया कि
कुत्सित, साम्प्रदायिकता के विष से भरे राजनीतिक दलों पर प्रतिबन्ध लगा
दिया, परन्तु सरकार सब कुछ कहां तक करे। अब भारत में साक्षरता में
वृद्धि हुई है, स्त्रियों में नई चेतना आई है, फिर क्यों हम सभी सम्प्रदाय के लोग
परस्पर द्वेष-भाव से काम लें। यहां यह कहना भी समीचीन होगा कि भारत
के जो मुसलमान हैं उन की विचारधारा में परिवर्तन आना अनिवार्य है–
अपने को पहले भारतीय समझें और तदुपरान्त मुसलमान। अभी तक मुसलमानों
में अपने को भारतीय समझने की गौरवपूर्ण भावना का उदय नहीं हुआ है।
यदि मुसलमानों में देश की विचारधारा के साथ अपने को बदलने की भावना
पैदा हो जाय तो भारत में एकता की ऐसी मजबूत जड़ें गड़ जायेंगी जो कभी
किसी भी विषम परिस्थिति में नहीं उखड़ सकती। जब मुसलमानों में ऐसी
भावना उत्पन्न हो जायगी तो साम्प्रदायिक दंगे सदा के लिए स्वतः दफन हो
जायेंगे। फिर अन्य सम्प्रदायों को भी एक दूसरे के साथ सद्भावना तथा
भाईचारे के साथ व्यवहार करना चाहिए। क्यों हम हरिजनों को प्रताड़ित
करें, उन के साथ अभद्र व्यवहार करें, क्यों हम उन पर अनुचित दबाव डाल कर
उन से बलपूर्वक, धमकी देकर वोट प्राप्त करें ?

आर्थिक वैषम्य भी राष्ट्रीय एकता में एक बड़ी अड़चन है। केन्द्र की
ओर से प्रान्तों को न्यूनाधिक सहायता देने पर ही बहुत से झगड़े उत्पन हो जाते
हैं, इस का समुचित हल सरकार को निकालना होगा। भारत अभी तक एक
पिछड़ा हुआ और निर्धन देश है। जहां विकसित देशों की Per Capita
आमदनी हजारों रुपये वार्षिक है वहां भारत में ४६० रु० वार्षिक से अधिक
नहीं। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बैंकों का, और अन्य कुछ औद्योगिक
संस्थानों का राष्ट्रीयकरण कर समाजवाद की दिशा में एक महत्वपूर्ण पग उठाया
है वह भारत के खुशहाल भविष्य का अभिसूचक है। 'गरीबी हटाओ' का नारा

खोखला नहीं, इस में भी भारत की खुशहाली के बीज छिपे हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि सरकारी और गैरसरकारी कर्मचारियों के वेतनमान में जो अनावश्यक और अवांछनीय अन्तर पाया जाता है वह स्वतंत्र भारत में समाप्त होना चाहिए, यह अशोभनीय है। इसी आधार पर एकता की भावना को धक्का लगता है। आए दिन हड़ताल और बन्द के आयोजन होते रहते हैं और जनसाधारण को इन से भारी क्षति होती है, जो क्षति समूचे देश की ही है। भला जब मनुष्य को आवश्यकतानुसार जीवन-यापन करने की सुविधायें प्राप्त न होंगी तो उसके लिये देश प्रेम या राष्ट्रीय एकता का मूल्य क्या होगा? अतः नीरज ने ठीक ही कहा है :—

> धन की हवस मन को गुनहगार बना देती है,
> बाग के बाग को बीमार बना देती है।
> भूखे पेट को देशभक्ति सिखाने वालो,
> भूख इन्सान को गद्दार बना देती है।

और निःसंदेह भूख ही हमें चोर-डाकू बनाती है, इसी से हमारे अन्दर जयचन्द और मीर जाफ़र पैदा होते हैं। आर्थिक समानता के लिए अवश्य ही कुछ व्यावहारिक एवं उपादेय उपक्रम जुटाने होंगे।

धार्मिक संकीर्णता भी हमारी राष्ट्रीय एकता में बाधक है, और इस का सम्बन्ध कुछ अंशों में साम्प्रदायिकता से भी है। वस्तुतः हम स्वभाव से अपने धर्म को दूसरे धर्मों से श्रेष्ठ समझते हैं, ठीक है, समझें, लेकिन कम से कम अन्य धर्म की, धार्मिक गुरु या प्रवर्तक की, धार्मिक ग्रन्थों की तो निन्दा न करें। यह तो मानव का धर्म नहीं है। फिर कुछेक लेखक भी सिर फिरे होते हैं, जो मनुष्यों की चिरप्रतिष्ठित धार्मिक भावना को चोट पहुंचा कर, उस पर मनचाहा प्रहार कर, अपना पाण्डित्य प्रदर्शित कर क्या अधिक यश-अर्थ-अर्जित कर लेते हैं? उनके इस निन्दनीय कृत्य से तो दो सम्प्रदायों में द्वेषानल प्रज्वलित होकर उन्हें अपने में समेट कर भस्म करने लगती है और इस से फिर सार्वजनिक धन-जन की हानि होती है। क्या ही अच्छा हो यदि समय-समय विभिन्न धर्मावलम्बी एक ही मण्डप के नीचे बैठ कर विचारविमर्श करें, तंग नज़री को छोड़ कर व्यापक और उदार दृष्टि से काम लें स्वस्थ मन से—दूसरे की भावना का समादर करते हुए विचार करें। धार्मिक महापुरुषों के जन्मदिन के शुभावसरों पर ऐसे आयोजनों का प्रबन्ध किया जा सकता है।

इसी प्रकार के आयोजनों का प्रबन्ध अन्य उत्सवों जैसे दीवाली, दशहरा ईद, शिवरात्रि आदि पर किया जा सकता है जबकि सभी सम्प्रदाय एवं ध… के मनुष्य विशाल हृदय से, उदारमन से एक दूसरे के त्योहारों में शरीक हो… उन्हें बधाई दें, उनके साथ मिल कर हर्षोल्लास मनावें और निश्चित रूप… हम ऐसे अवसरों पर एक दूसरे के अधिक निकट आ सकते हैं तथा सद्भावना… पूर्ण वातावरण का निर्माण कर द्वेष एवं घृणा के दानव को मनुष्य के अन्दर… से निकालने में सफल हो सकते हैं। तीर्थाटन, पर्यटन, भारत-दर्शन आदि… समय भी हमारे अन्दर राष्ट्रीय एकता तथा भावात्मक एकता का उदय हो… सकता है। हम देखते हैं कि जम्मू में वैष्णव देवी की यात्रा, कश्मीर में… अमरनाथ की यात्रा, तथा सुदूर दक्षिण में अनेक महान मन्दिरों के दर्शन आदि… से भारत के सभी प्रान्तों के निवासी एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और इन… द्वारा भी धार्मिक एकता, सामाजिक एकता को बल मिलता है जो अन्त… राष्ट्रीय एकता को परिपुष्ट करते हैं। भारत के कोने-कोने से भव्यभू… कश्मीर के दर्शनार्थ यहां प्रत्येक वर्ष असंख्य लोग आते हैं, वे यहां के प्राकृति… दृश्यों से अपने आप को धन्य तो करते हैं साथ में कश्मीरी लोगों के सम… में आकर उन्हें प्रभावित करते हैं तथा स्वयं भी उन से प्रभावित होते है… इस प्रकार राष्ट्रीय एकता की भावना पल्लवित होती है। प्रत्येक राज्य… ओर से अभी तक छात्रों के लिए भारत-दर्शन का आयोजन नहीं किया जा… विश्वविद्यालय तथा कालेज इस दिशा में कुछ उत्साहवर्धक कार्य करते हैं… कुछ विद्यार्थी भारत के प्रमुख नगरों का भ्रमण कर देश की उन्नति-प्रगति… दर्शन कर गौरवान्वित होते हैं—अपने देश पर, अपने देशवासियों पर, अ… महान नेताओं पर। क्या ही अच्छा हो यदि प्रत्येक वर्ष अन्तरप्रान्तीय खे… कूद प्रतियोगिता, वादविवाद प्रतियोगिता आदि का भी प्रबंध सरकारी सहाय… से विशेष रूप में किया जाये।

चित्रपट भी राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में विशेष भूमिका पूरी क… सकते हैं। सामाजिक धार्मिक एकता, देशानुराग सम्बन्धी स्वस्थ चित्रों… निर्माण किया जा सकता है। कुछ चित्र इस दिशा में अत्यन्त महत्वपू… सिद्ध हुए हैं जिन में देशभक्ति की भावना आप्यायित है। चित्रपट में 'धी… को अच्छी तरह टेकिल करने की अपेक्षा है जो नवयुवकों का सही मा… निर्देशन कर सकें।

राष्ट्रीय एकता तथा भावात्मक एकता की कल्याणमयी भावना…

संवर्धित करने के लिये लेखकों, कवियों, उपन्यासकारों, नाटककारों – सभी को अपना दायित्व समझना चाहिये। ऐसे स्वस्थ, प्रकृत, श्लील साहित्य का सदा सर्जन करें जो हमारी राष्ट्रीय एकता की डोर को और अधिक मजबूत बनाए। विष्णु प्रभाकर ने 'आवारा मसीहा' के नाम से बंगाल के लब्ध प्रतिष्ठित कथाकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी लिखी, यह एक अच्छा प्रयास है, इस दिशा में। इसी प्रकार अन्य लेखकों को भी भावात्मक एकता अथवा राष्ट्रीय एकता के निमित्त ऐसे रचनात्मक कार्य करने चाहिए। हिन्दी के लेखकों को इस प्रकार के कार्य के लिये अधिक सक्रिय रहना चाहिये, क्योंकि इस से वे राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ राष्ट्र भाषा की उन्नति, उसके प्रचार-प्रसार का कार्य अधिक उपयोगिता के साथ पूरा कर सकते हैं। कुछ प्रान्तों में जो हिन्दी के प्रति नासमझी या वैमनस्य के कारण विरोध पाया जा सकता है उसे कम किया जा सकता है और फिर राष्ट्र भाषा के द्वारा राष्ट्रीय एकता को बल मिल सकता है। भारतीय ज्ञानपीठ तथा साहित्य अकादमी की ओर से साहित्यकारों को पुरस्कृत करने की जो योजना है वह बढ़ी महत्वपूर्ण तथा प्रशसनीय है। ये दोनों संस्थायें सभी भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य को पुरस्कार प्रदान कर साहित्यकारों को सम्मानित कर देश की एकता को सुदृढ़ करती हैं।

अन्त में एक महत्वपूर्ण बात यह कहनी है कि राष्ट्रीय एकता का सम्बन्ध भावना से है, हृदय से है। हम देश पर, देश की सम्पदा पर, संस्कृति और सभ्यता पर विशाल हृदय से विचार कर उसे अपना देश, अपनी संस्कृति मानें और संकीर्णता से काम न लेकर उदारता से काम लें। कितने दुःख की बात है कि अभी तक सभी प्रदेशों की शिक्षा सस्थाओं तथा अन्य सस्थाओं द्वारा हमारे राष्ट्रीय पर्वों—१५ अगस्त तथा २६ जनवरी को पूर्ण उत्साह और देशानुराग की भावना से नहीं मनाया जाता। क्या इस से हमारी एकता को खतरा नहीं, क्या वह टूट नहीं जायगी। केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों की ओर से इस प्रकार के 'विशेष आदेश' जारी किए जायें जिस में इन शुभावसरों पर प्रभात फेरी तथा अन्य कार्यक्रमों की योजना हो। फिर भी यह सरकार से अधिक हम सब का कर्तव्य है कि हम इन अवसरों का सम्मान करें, क्योंकि हम ने स्वतंत्रता की प्राप्ति सरलता से नहीं की है, इस में असख्य नर-नारी; बाल-वृद्ध के रक्त की गरमी छिपी है जिसे हमें कभी शीतल नहीं होने देना चाहिए।

आज राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़तर बनाने के लिये हमें स्वार्थमुक्त होना पड़ेगा। स्वार्थी राजनीतिज्ञ राजनीति को, स्वार्थी धर्मार्थी धर्म को, स्वार्थी शिक्षा-विशारद शिक्षा को, स्वार्थी समाज-सेवक समाज को जब तक दूषित बनाते रहेंगे तब तक हमारी राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ नहीं हो सकेगी, राष्ट्रीयता को अन्दर ही अन्दर घुन लगा रहेगा। भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार में जब तक हम फंसे रहेंगे, और शुतुर्मुर्ग की तरह बालू में मुंह छिपा कर समस्याओं को सुलझाने की प्रवंचना करते रहेंगे तब तक हमारी औद्योगिक उन्नति पूर्णरूपेण उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। ये गगनचुम्बी भव्य भवन, विशाल कारखानों की धुआं उगलती ऊंची-ऊंची चिमनियां व्यर्थ हैं यदि हमारा नैतिक चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र उन्नत नहीं हो जाता। राष्ट्रीय चरित्र ही राष्ट्रीय एकता की आधारशिला है जिस में किसी भी प्रकार की संकीर्णता हेय है तथा स्वार्थ-लिप्सा निन्दनीय है।
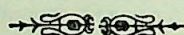
कथा साहित्य
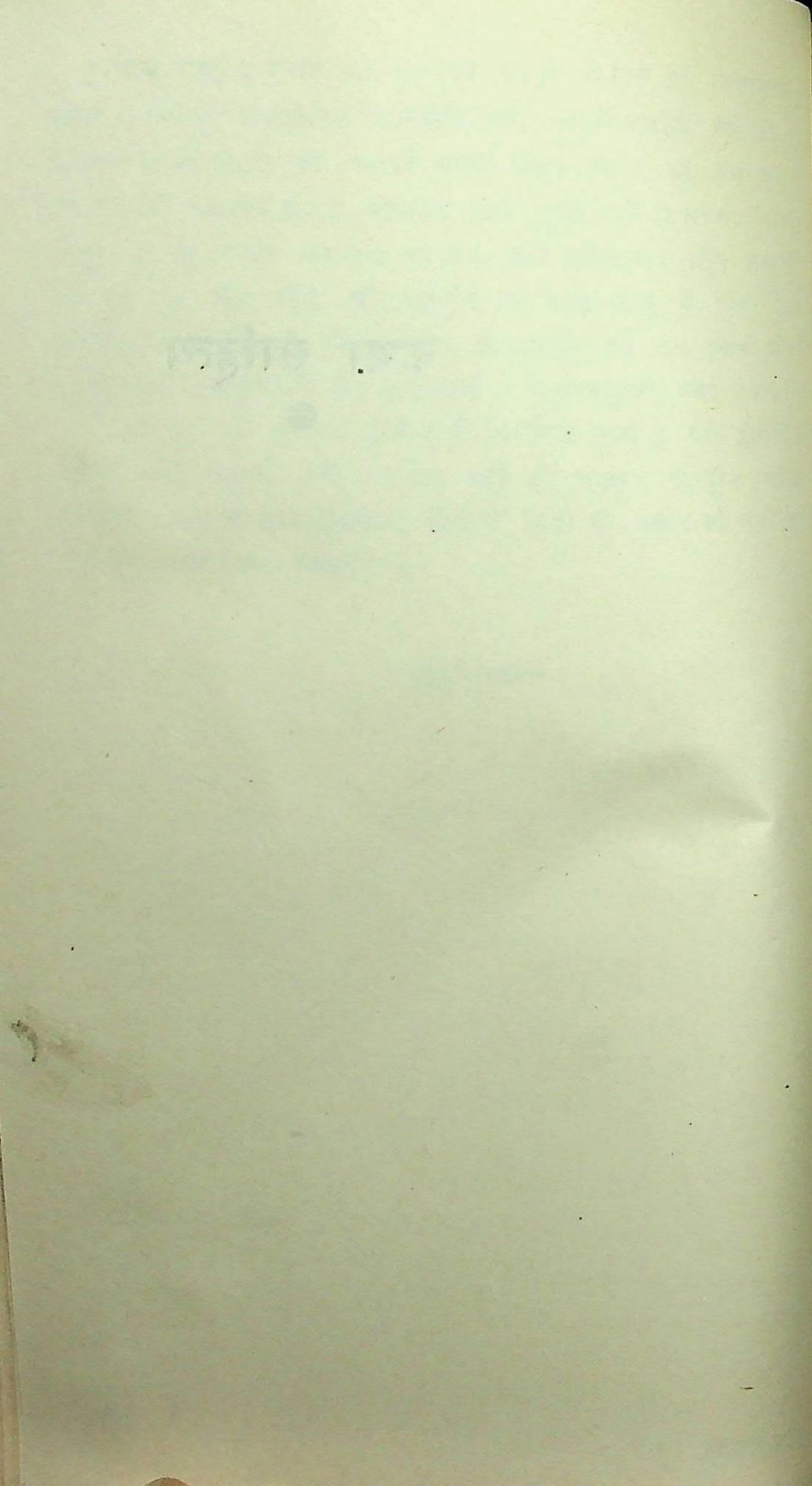
घुटन

राजध्यान पुरी

※

अमीं शयन कक्ष में बैठा हुआ कुछ पढ़ रहा था। उसका चेहरा उदास दीखता था। ऐसी मुद्रा में वह कम ही बैठता है। अधिकतर उस का प्रयत्न रहता है कि मां को प्रसन्न रखा जाए, वह कभी अनुभव न कर सके कि शीघ्र ही अमीं इस रंगीन संसार को छोड़ कहीं बहुत दूर चला जाएगा, नई दुनियां में।

अमीं को क्षय है। वह चाह कर भी अपनी मां को भेद नहीं देता। मां यह जानती हुई भी कहती है कि उसे भ्रम है; भ्रम के इलाज के लिए वह मायूस रहता है।

मां ने कमरे में प्रवेश किया तो अमीं का मायूस चेहरा देख कर आंतकित हो गई। उस की आंखें करुणा से भर आईं लेकिन आदेशपूर्ण लहजे में उसने अमीं से पूछा—"तुम चुप क्यों रहते हो? हर समय की चुप्पी भयानक होती है। सारा दिन घर के वातावरण को बोझल रखते हो। अपना नहीं तो मेरा ध्यान रखा करो, मैं ऐसे मायूस वातावरण में नही जी सकती।

उस की करुणामयी आंखें अमीं के चेहरे पर जम सी गई थीं।

अमीं में कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई। मां की अशान्ति से थोड़ा मुस्कराया और पुस्तक के पत्ते उलटने लगा।

वह अमीं के पास बैठ गई। नौकर चाय ले आया था। चाय को प्यालों

में ढालते हुए उस ने अमीं को निहारा तो उस की आंखों की कोरें गीली हो गईं जिन्हें पोंछने के लिए उस ने मुंह फेर लिया।

वह जानती है अमीं अपनी पीड़ा के बारे में कुछ नहीं कहेगा। सहानुभूतिपूर्ण शब्दों का अमीं पर कोई प्रभाव नहीं होता। वह समुद्र की भांति गहरा हो गया है जिस में गिर कर कोई भी पत्थर बिना बुड़बुड़ाहट के धरातल हो जाता है।

चाय का प्याला अमीं की ओर बढ़ाते हुए मां ने कहा, "बेटा, बहु को ले आ, जब से शादी हुई है दो महीने मेरे पास नहीं रही, तेरा भी दिल लग जाएगा।"

मां के शब्द सुन कर अमीं थोड़ा शरमा गया था। चाय का प्याला थाम उस ने मां की आंखों में देखा तो कुछ समय के लिए उसे अपनी पत्नी की याद आ गई। गहरी भूरी आंखें, जिन की सौम्यता में प्रत्येक मर्द खो सकता है। अमीं ने चाय की चुस्की ले कर कहा, "मां, मायूस क्यों रहती हो" ?

अमीं के प्रश्न से मां को याद आया कि यह प्रश्न तो उसने पूछा था जिस का उत्तर अमीं ने नहीं दिया। उत्तर में वह अमीं को देखती रही। वह निश्चल आंखों शून्य में ताक रहा था।

अमीं डाक्टर से हुई वार्ता के प्रति सोच रहा था। उसने डाक्टर से कहा था। "मौत को थोड़े दिन दूर रखने के लिए औषधी का सेवन किया जा सकता है। लेकिन जब मरना ही है तो दवाई खाने से क्या होगा।"

डाक्टर ने औषधियों की सूचि थमाते हुए महसूस किया था कि अमीं को उपचार से कोई सरोकार नहीं। वह तो इस इन्तज़ार में है कि कब मां की चीख सुन कर मुहल्ले के लोग भागते आएं और अमीं के मुर्दा शरीर को घेर लें।

डाक्टर ने अमीं को झिंझोड़ दिया था, "तुम मौत को इतना सहज लेते हो"। अमीं ने डाक्टर के हाथों को कोमलता से हटा दिया था। अमीं को याद है डाक्टर थोड़ा कांप गया था। "मुझे तुम पर विश्वास नहीं होता। अपने पेशे में कई मरीज़ देखे हैं जिन पर मौत छा जाने को होती है, वे छटपटाते

हैं लेकिन रात की तरह मौत उन्हें समेट लेती है। वे उस की ठण्ढक महसूस करने की तैयारी नहीं कर पाते। लगता है तुम तैयार हो जो इतने सबल हो।"

और अमीं को लगा था कि उस की आवाज़ गहरी गुफा में घुस कर वापिस आ गई थी लेकिन इस गुफा को माप लेना उस के वश में नहीं। अक्सर यूं होता है कि जो मनुष्य सब कुछ महसूस करता है वह कुछ भी विश्लेषण नहीं कर पाता।

मां ने अमीं के हाथ से प्याला पकड़ लिया था। ठण्डी चाय को मेज़ की एक तरफ रख कर उस ने नौकर को आवाज दी कि ताज़ी चाय बना लाए। अमीं के कन्धे पर सिर टिकाते हुए मां ने पूछा था, "बेटा डाक्टर ने क्या कहा है," और स्वयं ही बात पूरी कर दी थी, "कुछ भी नहीं कहा होगा।"

मां के सिर को अपने कन्धे पर अनुभव कर अमीं को बहुत सकून मिला। उसे अपनी पत्नी के सुगंधित बाल याद आ गये तो यूं लगा कि उस ने डाक्टर से झूठ कहा है। वह मरना नहीं चाहता। कोई व्यक्ति मौत को सहजता से नहीं लेता। उसे शादी के समय ली गई शपथ याद आ गई। "हम साथ ही जीएंगे और साथ ही मरेंगे।" वह असमंजस में पड़ गया कि पत्नी को जीवित छोड़ कर वह अकेला कैसे मर सकेगा?

मां ने डाक्टरी सलाह के प्रति पूछा तो अमीं ने कह दिया, "हां मां; कुछ भी नहीं कहा; आखिर डाक्टर और कह भी क्या सकता है? सैनेटोरियम में रह कर ठीक हो जाएगा।" मां को दिलासा देने के लिए उसने बात को बढ़ाना चाहा था कि किसी और अनुभवी डाक्टर को दिखाएगा; वह बीमार नहीं है। लेकिन वह चाहते हुए भी कुछ न कह सका।

मां ने आंखें अमीं की आंखों में गड़ा दीं। उसे अमीं की आंखों में लाल दाग दिखे जो रिस रिस कर फैलते जा रहे थे, इन दागों के पीछे एक यातना उभर रही थी जिसे अमीं सह रहा है। यह दाग लाल क्यों हैं? यह काले हो जाएं तो क्या होगा .... आंखों की सुन्दरता बढ़ जाएगी... ...या मौत। मौत को सोच कर मां की चीख निकल गई... ... नहीं... ... ... इ... ... ... यह नहीं हो सकता। उस की चीख से कमरा गूंज उठा और देर तक निस्तब्धता छाई रही।

अमीं की सामाजिक मृत्यु तो पहले ही हो चुकी है। लोग उस के प्रति क्रूर हो गए हैं। उस के घर के पास से गुजरते हैं तो उन्हें यही उम्मीद होती है कि सुबह तक अमीं मर जाएगा। कई बार वे बड़े मायूस होते हैं। वे लगी हुई शर्तें हार जाते हैं।

लोगों की इस क्रूरता का जिम्मेदार अमीं ही है जिसने अपने मुहल्ले के लोगों को बीमारी के प्रति बताया था। मां ने समझाया भी कि लोग उसे छिटक देंगे। लेकिन अमीं नहीं माना। "मां लोगों के छिटक देने से क्या होगा, मेरे लिये मरना आसान हो जाएगा। सांसारिक मोह छूट जाए तो मरना आसान हो जाता है।"

वह चीख कर रो पड़ी थी। "अमीं तुझे मुझ पर तरस नहीं आता। क्या तू हंस नहीं सकता? कम से कम मैं लोगों को यह तो कह सकूं कि अमीं अब स्वस्थ है, उसे कोई रोग नहीं। लोग मुझे बधाई देंगे, जैसे तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।"

अमीं हस्पताल से छुट्टी ले कर आया था। उसने मां का दिल रखने के लिये हंसने का प्रयत्न किया था। "अच्छा मां हंसता हूं" और खोखली छाती से एक अटहास उठा था जो कमरे की दीवारों से टकरा कर कट गया था लेकिन मां प्रसन्न हो गई थी।

वह मुहल्ले में हसती बतियाती रही थी। हर पहचान रखने वाला उसे बधाई देता रहा था। लेकिन वह बहुत रात बीते वापिस आई तो अमीं की खाट की बाही पकड़ कर बैठ गई। उसे लगा था कि उस का हाथ बर्फ के ढेर में धंस रहा है और धंसता जा रहा है।

अमीं का शरीर टूट चुका है पर वह मां को इस बारे में कुछ नहीं बताता है। उस की पत्नी मायके में है। शादी को हुए अधिक समय नहीं हुआ यही कोई छः महीने। इस अरसे में पत्नी का अधिक साहचर्य नहीं मिला। शरम के पर्दे अभी उठे भी नहीं थे कि अंशु का भाई उसे वापिस ले गया था। अमीं ने अंशु को भेजते हुए एक आह भरी थी। काश! वह स्वस्थ होता -- इस औरत के लिए।

कई बार अमीं ने कहला भेजा है। लेकिन अंशु नहीं आई। आज जब मां ने बहु को लाने को कहा तो उस का मन ललक उठा था। पत्नी को देख

भर देखने को तरस गया था। लेकिन वह खामोश रहा और मां की आंखों में देखता रहा था।

अमीं को याद है कि एक बार उस ने अंशु को अपनी निर्बल भुजाओं में जकड़ कर बार बार चूमा था। वह उसकी भुजाओं में सिमटी हुई पिघलती जा रही थी। अमीं की सांस फूल गई थी। चेहरे पर पसीना छलछला आया था। उस ने हांपते हुए अंशु को धीमे स्वर में कहा था, "अंशु मैं चाहता हूं कि तेरे लिए अपना कोई चिन्ह छोड़ जाऊं।" इतना कह कर अमीं ने अपना चेहरा हाथों की आड़ में छिपा लिया था जैसे कोई गुनाह कर दिया हो। अंशु शरम और झेंप से लाल हो गई थी और अपने गर्म कपोलों को अमीं के ठण्डे पड़े हाथों से छुआ दिया था।

धीरे धीरे अंशु की कोमल बाहें अमीं की गर्दन के गिर्द लिपट गईं। उस ने आंखें मूंद ली थीं। अमीं कोई निश्चय नहीं कर पाया था। उस के मन में दो विचार उभरे थे। यदि बच्चा न हुआ तो उस का कोई चिन्ह नहीं रहेगा। यदि बच्चा पंगु हुआ तो समाज का बोझ होगा। इस विचार से अमीं को अपने बारे लगी शर्तें याद आ गई थीं। लोगों की अपने प्रति विरक्ति देख अमीं कराह उठा था। उन का विश्वास है कि क्षयी बाप के बच्चे क्षयी होते हैं। इसी कारण कोई पड़ोसी बधाई देने की बजाए अमीं को पीटने भी आ सकता है।

विचारशील अमीं ने अपने जिस्म को टुकड़े टुकड़े कर देना चाहा था। उस का सिर भारी हो गया था। सीने में धड़कन बढ़ गई थी। उस ने सीने को दबा कर धड़कन वश में करने का प्रयत्न किया। छत से घुन द्वारा खाई गई लकड़ी का बूरा गिर रहा था। लकड़ी के कुतरे जाने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। अमीं की छाती में भी यह घुन लगा था। जिस की कुतरन से डर कर वह सहम गया था और इस दबे घुटे वातावरण में सुबह हो गई थी।

उजाला

सुदर्शन 'सागर'

*

वह उन्हीं टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर घूम रहा था जहां प्रायः प्रतिदिन घूमा करता है, शहर जाने की अपेक्षा वह शाम को इन सुनसान पहाड़ियों की ओर आ जाता और दूर तक निकल जाता, नीचे सूखा हुआ बरसाती नाला था, आबादी बहुत ही कम थी, पास-पास चार-पांच घरों को ही गांव का नाम दे दिया जाता था, नंगी पहाड़ियों पर घूमना उसे अच्छा लगता था।

उस के गांव में भी ऐसी ही आबादी थी; ऐसा ही था उस का गांव भी, अन्तर इतना ही था कि वहां कुछ समतल भूमि थी, उसे याद आया जब वह पिछले वर्ष घर गया था तो वही घर, आस पास के पेड़ों के झुरमुट, आंगन में लगे हर-सिंगार के पेड़ों की कतार; सब कुछ बदला-बदला सा लगा था, सारे वातावरण में एक परिवर्तन आ गया था जो उसे सुखद लगा था।

वर्षों बाद उस घर में बहार आई थी, पिता की मृत्यु के बाद घर में उदासी सी छाई रहती, हंसने बोलने वाला था ही कौन? घर में एक मां थी, एक वह।

मां ने उसे लिखा था कि किराएदार बसा लिये हैं, इतना बड़ा घर था अतः घर में अकेलापन, उदासी दूर करने के लिये आधा भाग किराए पर दे दिया; उस ने भी सोचा, अकेली मां को सहारा हो जाएगा अतः कोई विरोध नहीं किया था, मां ने लिखा था कि उनकी केवल दो लड़कियां ही हैं, लड़का कोई नहीं, और फिर जब वह घर गया था तो कुछ ही देर बाद बड़ी लड़की पूनम

आ गई थी; लम्बी पतली सी, शर्मीली; पहली ही नजर में उसे बड़ी भली लगी थी। वह प्राय: रोज ही मां का हाथ बटाने आ जाया करती थी, खाना बनाने तथा दूसरे कामों में। मां ने उस का परिचय कराया था; "यही है मेरा प्रभात, पांच दिन की छुटी आया है।" पूनम निगाहें झुकाए ही 'नमस्ते' कह काम में लग गई थी जैसे वह उस घर की मालकिन हो और प्रभात मेहमान। पहले-पहल प्रभात को अपना ही घर बेगाना सा लगा था परन्तु धीरे-धीरे पूनम की उपस्थिति अच्छी लगने लगी थी। वह बहुत कम बोलती, चुप-चाप काम में लगी रहती और प्रभात उसे काम करते देखता रहता। कभी-कभी आंखें चार होने पर वह पलकें झुका लेती; कुछ पूछने पर उत्तर देती अन्यथा चुपचाप गुमसुम काम में लगी रहती।

दूसरे दिन पूनम हर-सिंगार के पेड़ के नीचे बैठी थी: हर-सिंगार में फूल लगे थे। कुछ देर पहले वर्षा हुई थी, नन्हीं नन्हीं पानी की बूंदें फूलों पर, पत्तों पर, टहनियों पर टिकी थीं। सूरज बादलों की ओट से झांक रहा था, पानी की बूंदें फूलों, पत्तों, टहनियों पर चमक रही थीं। प्रभात सैर करने जा रहा था। पूनम को नीचे बैठी देख उस ने पेड़ को जोर से हिला दिया था और ढेर सारे फूल, मोतियों सहित उसके ऊपर, आस-पास गिर गये थे और वह गठरी सी सिमट गई थी। तभी मां ने अन्दर से उसे आवाज दी थी और वह भाग कर घर में घुस गई थी।

प्रभात ने अनेक बार सोचा कि पूनम से सब कुछ कह दे, कह दे वह उसे चाहता है और.... और सदा उसे इसी तरह, इसी घर में देखना चाहता है। परन्तु पूनम की चुप्पी देख वह सहम जाता था। प्रभात ने अनुभव किया वह खुल कर, खिलखिला कर कभी न हसती थी; केवल मुस्काती थी और वह मुस्कान, मन्द सी मुस्कान उसे भली लगती थी।

पांच दिन तो पलक झपकते ही बीत गये थे और वह वापिस आ गया था— मन में कुछ मिठास और कुछ फीका सा लिये।

वह बहुत नीचे उतर गया था, उसी सूखे बरसाती नाले के पास। वह जल्दी-जल्दी वापिस मुड़ने लगा, लेकिन आती बार चढ़ाई थी और उसे थकान अनुभव हो रही थी।

प्रभात ने अवकाश ले घर जाने का निश्चय किया। सोचा, वह घर जा कर सब कुछ अपनी मां को बता देगा और पूनम को भी। वह आवश्यक सामान

ले गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी आवाज़ के साथ-साथ उस के दिल की धड़कनें भी तेज़ होने लगीं।

आंगन में हर-सिंगार के सब फूल झड़ चुके थे। आसपास पेड़ों के झुरमुट भी सूख चुके थे, घर में खामोशी छाई थी। अन्दर पहुंचा तो मां अकेली ही थी। कुछ देर बाद मां खुद ही चाय बना लाई और बोली "इस बार तो बड़ी जल्दी घर आ गए" प्रभात सच ही जल्दी घर आ गया था--- पहले तो कई-कई महीने बीत जाते थे।

"हां मां, छुट्टियां थीं, सोचा उधर भी क्या करूंगा, इधर आ गया।"

उस की निगाहें किसी को ढूंढ रही थीं, आखिर उस ने पूछ ही लिया :— "मां, अब पूनम नहीं आती? दिखाई नहीं दी।" मां झट से बोली :— "वह तो अपनी छोटी बहन को ले घर गई है। घर की सफाई वगैरह करनी होगी। उस की शादी की बात चल रही है न, शायद इसी साल हो जाये।" प्रभात वहीं बैठा सुन्न हो गया था। उसने बड़ी मुश्किल से मनोभावों को दबाये रखा, चेहरे पर विकार न आने दिया। झट से चाय पी वह बाहर घूमने निकल गया।

बड़ी देर तक वह व्यर्थ ही घूमता रहा, सारा गांव उसे उजाड़ सा, सूना-सूना सा लग रहा था, शाम होने से पहले ही सूरज को बादल के टुकड़े ने ढक लिया था। वह उन धुन्धले से पेड़ों के बीच, सूखी लताओं के बीच कुछ अपना ढूंढ रहा था जो उन्हीं में खो गया था। पास कोई न था जिस से वह अपना दर्द बांट सके। पक्षी बिना पत्तों के वृक्षों में छुपने का स्थान ढूंढ रहे थे, उसके पैरों के नीचे चरमराते सूखे पत्ते, सूने घर, उड़ते पक्षी भी शायद उसी की ही तरह व्याकुल थे।

वह घर की ओर मुड़ गया, घर भी उसे अच्छा न लगा। वह उसी पक्षी की तरह था जो आस-पास कहीं छुपने की जगह ढूंढ रहा था लेकिन सूखे पेड़ों में उसे कहीं भी छुपने के लिये सुरक्षित स्थान नहीं मिल रहा था।

खाना खाते समय उसने मां से पूछा—"मां, अब पूनम यहां कब तक आयेगी?" मां ने बताया—कुछ ही दिनों में वह दोनों बहनें यहां आ जाएंगी और उनके माता-पिता वहां चले जायेंगे; शादी की तैयारी के लिये।" फिर कुछ देर खामोशी रही। मां ने फिर कहा—"लड़की बड़ी अच्छी है, सब काम जानती है, पढ़ी लिखी भी है। जिस घर जायेगी, स्वर्ग

बन जायेगा, पर बेटा, तू कब शादी करेगा, मुझ से अब घर नहीं सम्भाला जाता।" प्रभात अभी तक पूनम के ही बारे में सोच रहा था, अचानक उस के मुंह से निकल गया—'जब पूनम जैसी लड़की मिल जायेगी।" कहने के बाद वह कुछ झेंप गया लेकिन मां ने कहा—"हां बेटा, मुझे भी पूनम जैसी ही बहू चाहिये। मैंने तो कब का कहा होता लेकिन वह हम से नीची जाति की है, बिरादरी नहीं मानती। तुझे पता ही है कैलाश की क्या दशा हुई और उस लड़की की भी।"

प्रभात के सामने कैलाश का चित्र घूम गया। उस ने धीरे से कहा—"मां, मैं तुम्हें पूछे बिना कुछ भी नहीं कर सकता। तुम्हें मेरा पता ही है।" प्रभात के सामने ही कैलाश जब शहर से आया था तो साथ दुल्हन भी लेता आया था; पता लगा कि लड़की बंगालिन है, कई दिन तक उन दोनों से कोई भी न बोला था। मां-बाप तो आगे ही नाराज थे। उन्होंने दोनों को अलग कर दिया, हर जगह उन्हीं की ही चर्चा होती। मर्द और औरतें उन्हें छुप-छुप कर देखते और तरह-तरह की बातें करते। इसी कारण कैलाश की नौकरी छूट गई, वह पत्नी को अकेला घर न छोड़ सका, लोग तरह-तरह के ताने मारते। बुरे दिन आ गये, भूखा रहने तक की नौबत आ गई। परन्तु उस लड़की ने सब सहा, कभी कैलाश से या किसी और से शिकायत न की। धीरे-धीरे उसने सास, ननद आदि को अपने धैर्य, सहनशीलता व सेवा से प्रसन्न कर लिया और एक वक्त ऐसा भी आया कि प्रत्येक कह उठा कि पत्नी है तो कैलाश की।

फिर सब से बड़ी बात जो प्रभात को कुरेदने लगी वह यह कि कैलाश के बच्चों को लोग कैलाश के बच्चे न कह कर 'बंगालिन के बच्चे' या 'बंगाली' कहते थे। वह यह नहीं चाहता था कि पूनम को भी इसी तरह अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़े, उस के बच्चों का भी कोई नाम रखे। वह मां से कुछ न कह सका और खिन्न मन से वापिस आ गया।

दीवाली आ रही थी। प्रभात को मां का पत्र मिला कि इस बार वह घर अवश्य आये नहीं तो अन्धेरा ही रहेगा, वह घर न जाना चाहता था परन्तु बूढ़ी मां की ओर देख उसे आना ही पड़ा।

रेलगाड़ी का छोटा सा स्टेशन था। यही कोई पांच मिन्ट तक गाड़ी वहां रुकती थी। शाम को गाड़ी पहुंची, वह उतरा, वहां चार-पांच आदमी

ही उतरते या चढ़ते थे। प्रायः स्टेशन सुनसान रहता था। उस ने अपना बैग सम्भाला और स्टेशन से बाहर हो गया।

कुछ दूर जाने पर ही प्रभात को ठिठक जाना पड़ा, सामने से पूनम छोटी बहन के साथ आ रही थी, वह चुपचाप निकल जाना चाहता था कि पूनम ने पास आते ही कहा—"वाह! हम आप को लेने आई हैं और आप बिना बोले ही खिसक रहे हैं।" प्रभात चिल्ला कर बोला—"मुझे लेने आई हो? क्या मुझे रास्ता नहीं मालूम था, मैं बच्चा हूं?" पूनम ने तुरन्त जबाव दिया—"जी, मां जी ने तो ऐसा ही कहा है कि आप बच्चे हैं और रास्ता भी भूल गये हैं, वे तो यही कह रही थीं कि घर आने के बजाय कहीं और ही न चले जाएं इसी लिये तो हमें भेजा है, लाइये, मुझे पकड़ा दीजिए ये बैग," और वह बैग लेने के लिये आगे बढ़ी। प्रभात एकदम पीछे हट गया, वह हैरान था कि इतनी चुप सी रहने वाली लड़की इतना भी चहक सकती है।

प्रभात सोच रहा था कि इस से कैसे बात की जाये, कोई वादा नहीं, कोई कसम नहीं, यहां तक कि यह भी प्रकट न हो सका कि उन में प्यार है। प्रभात ने उस की ओर देख कर पूछा—"तुम्हारी शादी अभी नहीं हुई?" उस ने लापरवाही से उत्तर दिया—अभी तक तो मगनी हुई है, शादी भी हो जाएगी।" प्रभात को लगा पूनम ने उसके पुराने घाव को कुरेद दिया है, उस से फिर खून बह निकला है। वह तड़प उठा—"मुझे भी बुलाओगी अपनी शादी में?" वह मुस्करा कर बोली—'जी, जरूर! आप ही तो एक मेहमान होंगे" और प्रभात को लगा यदि वह कुछ और बोलेगी तो उस का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जायेगा। उसने कदम तेजी से उठाने शुरु किये। पूनम व उस की बहन को पीछे छोड़ वह आगे बढ़ गया।

अन्धेरा बढ़ने लगा था। कहीं से आती पटाखों की आवाज वातावरण की नीरवता को भंग कर रही थी। अभी तक चिराग न जले थे और सब ओर गहन उदासी छाई हुई थी, मां अन्दर दीपकों में तेल डाल रही थी, प्रभात को आते देख आश्चर्य से बोली—"पूनम नहीं मिली" प्रभात ने रुखाई से उत्तर दिया: "मिली थी, पीछे आ रही है" मां बेटे की मनोदशा से अनभिज्ञ, उत्साहित हो कहने लगी—अच्छा किया बेटा तू आ गया। मैं तो इन्तजार करते-करते थक गई थी।"

उसी समय पूनम भी आ गई, वह अब पहले की तरह ही गम्भीर हो गई थी, चुप-चाप निगाहें झुकाये अन्दर चली गई। प्रभात ने देखा अब उस में बहते पानी सी चंचलता समाप्त हो गई थी और सरोवर जैसी ठहरे पानी सी स्थिरता आ गई थी।

प्रभात हाथ-मुंह धो चाय पीने लगा तो मां ने बात छेड़ी—"मैंने तुम्हारी शादी तय कर ली है" प्रभात मां के चेहरे को घूरता रहा जैसे उसे विश्वास न हो रहा हो। "मेरी शादी ?" "हां बेटा शायद तुम्हें मन्जूर होगी।" "लेकिन मां, मुझे तो पूछ लिया होता।" "तुझे पूछ कर ही तो सब किया है।"

"मुझे ? मुझे कब पूछा, मैं क्या जानता हूं ?" मां ने कुछ देर बाद कहा :—"तुम्हें स्टेशन पर लेने जो लड़की गई थी, उस के बारे में क्या ख्याल है ?" "पूनम ?" प्रभात के मुंह से अचानक निकला। 'हां' मां ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

उसे लगा जैसे उस की सारी खुशी इसी 'हां' में छुपी है। वह खुशी को मन में ही दबा कर बोला, "लेकिन सब लोग क्या कहेंगे।" "लोगों का क्या है बेटा, ये बिरादरी वाले तो सभी पागल हैं। पहले कैलाश की पत्नी को सब दुत्कारते थे लेकिन अब सभी पूजते हैं। मैं तो अब इन लोगों से नहीं डरती। दूसरे इन्सान चाहे कैसा भी हो, यदि उस में धैर्य, सेवा-भाव और मिलनसारी हो तो वह सारी दुनियां को जीत सकता है। यदि तू डरता है तो अभी बोल दे।"

"नहीं मां, डरने की तो कोई बात नहीं।"

प्रभात दीपक जला-जला कर पूनम और उस की बहन को दे रहा था, पूनम उन्हें सजा-सजा कर रख रही थी। आकाश के सितारे धरती पर उतर आये थे। प्रभात ने धीरे से पूछा, तुम अपने घर किस की शादी की तैयारी करने गईं थीं। जल्दी से "आप की" कह वह अन्दर भाग गई।

प्रभात के घर के प्रत्येक कोने में उजाला फैल गया। कैलाश के घर में भी दीपक जले हुये थे। धीरे-धीरे यह उजाला सारे गांव में फैल रहा था।
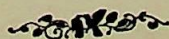
पानी पर पग-चिन्ह

अश्विनी मगोत्रा

※

सिपाही ने घड़याल पर पूरी बारह टंकोरें लगाईं, बार और तिथि दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, एक लम्बी आह भरते हुये पीछे की ओर मुड़ गये। एक दौर समाप्त हो चुका था, परतंत्रता की जंजीरें टूट गई थीं, भारत स्वतंत्र था। कैदियों की बैरकों में कुछ घुसर-फुसर हुआ और जंजीरें छनक उठीं। जेलर साहब ने सामने बैठे हुये व्यक्तियों पर एक दृष्टि डाली और अपनी कुर्सी को पीछे धकेलते हुए खड़े हो गये। जेल के बाहर इकट्ठी हुई भीड़ में सुल-बुल, सुल-बुल हुआ और सब की नजरें जेल के बड़े किवाड़ पर जम गईं। कुछ समय उपरांत गेट खुला, धीरे-धीरे कुछ व्यक्ति बाहर आने लगे और फिर एक कतार सी लग गई। अन्दर से व्यक्ति आते गये और बाहर से भीड़ छंटती गई। और सड़क फिर अकेली बिछी की बिछी रह गई। सर झुकाये चुप चाप एक व्यक्ति अन्दर से निकला और फाटक के बीच में आ खड़ा हुआ। पल भर वह खड़ा खड़ा दूर जाती अन्धेरे में डूबी सड़क को देखता रहा। फिर दो कदम आगे बढ़ कर गेट की ओर दृष्टि डाली, काले बोर्ड पर लिखे श्वेत अक्षर उसकी आंखों में गढ़ गए। "सैंट्रल जेल"!

उस ने एक लम्बी आह भरी और जा कर सड़क के अन्धेरे में डूब गया। कुछ देर पांव की ध्वनि सुनाई देती रही और धीरे-धीरे वह भी मानो अन्धेरे ने निगल ली हो। दूर कहीं कोई लाऊडस्पीकर गा रहा था :—

"अब कोई गुलशन न उजड़े
अब वतन आज़ाद है... ॥"

हवा का एक वेगपूर्ण झोंका आया, मरघट के बूढ़े चौकीदार के कमरे में जलती बत्ती की लौ एक बार कांपी और फिर बुझ गई। उसकी विचार धारा टूट गई। कमरे की अंधेरे में डूबी दीवारों पर एक दृष्टि डाली, हाथ माथे पर फेरा, माथा कुछ गीला सा लगा। फिर धीरे-धीरे उस के हाथ अपना सारा शरीर छूने लगे। शरीर पसीने से भीग चुका था। कमरे के बाहर बारिश या तो थम चुकी थी या रुकने को ही थी। वह चारपाई से उठ कर बैठ गया। तकिये के नीचे से माचिस निकाली, और अधेरे में बत्ती ढूंढ कर जलाने का यत्न करने लगा। हाथ कांप रहे थे, एक, दो, तीन और फिर चौथी दीयासिलाई जलने पर कमरे में बत्ती की पीली मद्धम सी रोशनी बिखर गई। मन की घुटन कुछ उभरी। भावनाएं मानो घनी चादर ओढ़ सो गई हों। पर, सिर कुछ भारी हो गया था।

हवा का एक और झोंका आया और सामने वाली दीवार से टकरा कर अन्दर बिखर गया। हवा ने अब आंधी का रूप धारण कर लिया था। बत्ती की लौ एक बार फिर कांप उठी। कबरो में सोई आत्माएं मानो कराह उठी हों। कितने ही गीदड़ चिल्ला उठे। उसने अर्ध निद्रा में से जाग कर आंखें खोल दीं। उठ कर दीवार में लटकती पुरानी मैल-कुचैली बरसाती उतारी, अपनी दोनों बाहें उस में घुसेड़, मिलिटरी के पुराने फटे बूटों में अपने दोनों पांव छुपाए, कोने में पड़ी लाठी उठा बाहर निकल गया। वह अंधेरे में बेरोक मरघट के पूर्वी कोने की ओर बढ़ता गया। एक श्वेत सी कब्र के समीप पहुंच कर उस के पांव जम गये। कुछ देर ऐसे ही खड़ा खड़ा वह कबर की ओर घूरता रहा। एकाएक जैसे बादलों ने चांद को स्वतंत्र कर दिया हो। कब्र चांदनी में और निखर उठी। उस ने धीरे से मुस्कराने का यत्न करते हुये कब्र को थप-थपाया, गालों पर आए अश्रुओं को पोंछा और फिर उस के पांव पहाड़ी टीले की ओर हो लिये। हवा का प्रकोप कुछ कम हो गया था। पर, टीले के पीछे नाले का गर्जन लगातार सुनाई दे रही था। एक बार फिर बादलों ने चांद को अपने काले दुशाले में लपेट लिया। अंधेरे में घिसटती उस की बूढ़ी टांगें टीले को फलांगने के यत्न में थीं और दिमाग में था जेल की बदबूदार अंधेरी कोठड़ी का नक्शा, जंजीरों की झनझनाहट, बरामदे में से गुजरते सिपाही के बूटों की खट-खट और कन्धे पे लटकी बन्दूक की नोकदार संगीन। उसे याद आया जब वह पहली बार जेल गया था। सिपाहियों ने उसे घेर रखा था। वह निर्भीक बना उन के मध्य खड़ा बारी बारी से सब को कड़ी दृष्टि से

देख रहा था। बड़ी सी मेज़ के पीछे बैठे जेलर साहब ने गुलामी के भार से आगे को झुकी हुई मूंछों को ऊपर उठाते हुए कड़कदार आवाज़ में पूछा।

"तुम्हारा नाम,......?"

"अब्दुल रफीक।"

"बल्द... ?"

"—कसूर मेरा है, बलदियत की क्या आवश्यकता है। आप मुझ से बात कीजिए।"

फिर सिपाहियों की मार, जेल की वह अंधेरी तंग कोठड़ी। दस साल की स॰ा काट कर जब वह बाहर निकला तो ऐसा लगा कि फिर से नया जन्म मिला हो। फिर जेलर की हत्या। पुलिस के सिपाहियों से आंखमिचौनी और फिर उस का एक टोली का सरदार बनना। अंग्रेज़ सरकार के पांव लड़खड़ा गये थे। अफरा तफरी में जेलें भरी जा रही थीं। उस का फिर से गिरफ्तार होना। फिर वही अन्धेरी कोठड़ी, जजीरों की झनझनाहट।

उसे एक झटका सा लगा। वह आज़ाद था, सारा भारत आज़ाद था। कड़-कड़ करती जजीरें टूट गईं। अंग्रेज वापिस चला गया। एक नया दौर आरम्भ हुआ। भारत की स्वतत्रता का दौर। सारे कैदी इस खुशी के मौके पर छोड़ दिये गये।

एक ठोकर लगी जंजीरें एक बार फिर झनझना उठीं, उस ने अपने आप को सम्भाला वह टीले की पिछली तरफ लगी जंजीरों में फंसा झूल रहा था। उस ने नीचे नाले की ओर झांका। अन्धेरे में सिवा असीम गहराई के और कुछ न था। घड़ी भर के लिए उस का रंग फक हो गया। इक नज़र आसमान की तरफ देखते हुए एक लम्बा सा सांस छोड़ा और वह दाईं ओर मुड़ गया। दाईं ओर मुड़ते ही शहर की जगमगाती इमारतें नज़रों में अटक सी गईं। इक भरपूर नज़र शहर को निहार कर वह शहर की ओर जाने वाली ढलवान पर उतर गया।

ज़ोर से बिजली चमकी, अंधेरे रास्ते पर घड़ी भर के लिए उजाला बिखर गया। उस की बूढ़ी टांगें घड़ी भर को ठिठकीं फिर शहर की तरफ बढ़ गईं।

बूंदा बांदी फिर से शुरू हो गई थी। गलियों में घूमता फिरता वह बाज़ार में निकल आया। बारिश के साथ-साथ हवा का ज़ोर भी बढ़ गया था। सामने एक सरकारी भवन बिजली की रंगबिरंगी रोशनियों से जगमगा रही था। वह ठिठक गया, कांपते होंट थरथरा उठा "पच्चीस वर्ष!" आज़ादी के पूरे "पच्चीस वर्ष।"

अचानक कुछ उसके पांव में आकर गिरा किसे कोने में से एक कुत्ता निकल कर झपटा। सड़क में बहते बारिश के पानी में कुछ देर मुंह मार कर वह फिर ऊची गर्दन किए भौंकने लगा। शायद खिड़की में से कोई हड्डी फैंकी गई थी उस में से एक ज़ोरदार ठहाका गूंज कर उस के मन में तेज़ाब की तरह उतर गया। फिर उसे फुसर-फुसर सी सुनाई दी 'सिल्वर जुबली' रोज़-रोज़ कहां आएगी, एक दौर और, फिर गिलासों के आपस में टकराने की आवाज़।

उस का सारा शरीर थर-थर कांप रहा था एक तो बारिश में वह काफी देर से भीग रहा था और दूसरे तेज़ हवा ने उसे झंझोड़ दिया था। शरीर तपने लगा था आंखें अंगारा हो रही थीं, उस ने आगे बढ़ने का यत्न किया पर बुखार से अंगारा हुई आंखें धीरे-धीरे बन्द होने लगी थीं। उसने बड़ी कठिनता से पीछे की ओर देखा सड़क बारिश के पानी से भरी हुई थी। दूर कोई गा रहा था—

"कदमों के निशां खुद ही,
मंजिल का पता देंगे।"

ख़िड़की में से एक बार फिर ठहाका सुनाई दिया, उसे ऐसा लगा जैसे वह सारी उमर ही पानी पर पांओं के निशान बनाता रहा हो। उस की कांपती टांगें धीरे-धीरे झुकती गई और फिर पानी में छटपटाने लगीं। फिर धीरे-धीरे उन का हिलना बन्द हो गया। गली में से निकल कर एक कुत्ता जोर-जोर से भौंक रहा था।

ममता

कु० ललिता पण्डिता

✻

सवेरा हुआ तो पक्षी चहचहाने लगे। प्रातः का मन्द-मन्द समीर अपने कोमल स्पर्श से सोई हुई प्रकृति को जगाने लगा। पर्वत मालाओं के पीछे से उषा देवी अपनी सुषमा को छिप-छिप कर बिखेरने लगी। माधुरी ने उठ कर खिड़की खोली और बाहिर का दृश्य देखने लगी। उषा के पवित्र आंचल के तले सारा जग अंगड़ाईयां सा लेता हुआ मालूम हुआ। मां का आंचल भी इतना ही शीतल और पवित्र होता है, जिस की छाया में मानव को अपूर्व शान्ति की अनुभूति होती है। कौन कहता है कि माधुरी मां नहीं है। क्या उस के सीने में दिल नहीं है। क्या उस का हृदय ममता के रस से लबालब भरा हुआ नहीं है। उस का लाल, उसके दिल का टुकड़ा संदीप ! क्या वह उस की मां नहीं है। माना कि वह उसकी कोख से जन्मा नहीं, लेकिन उसने उसको अपनी ममता के आंसुओं से पाला है। फिर क्यों जग वाले संदीप को माधुरी के आंचल के तले सोने नहीं देते। क्यों उन को उसके स्नेह में कांटे दिखाई देते हैं।

माधुरी इन्हीं विचारों में डूबी थी कि सास की कर्कश आवाज ने उसे जगा दिया। उस की आंखों में आए आंसू सूख गए और ममता उमड़ता प्रवाह अमृत बन कर सारे शरीर में फैलने लगा। वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगी—"हे ईस्वर मुझे शक्ति दो ताकि में अपने लाडले पर संसार की क्रूरता की छाया भी न पड़ने दूं।"

दस साल पहिले माधुरी का विवाह हुआ था लेकिन ईश्वर ने उस को
ा तक (दुनिया की नजरों में) मां बनने का गौरव नहीं दिया था। सास
ती थी कि यह कोखजली है, अभागिन है, बांझ है, न जाने किस
घड़ी में उसने मारे घर में पांव रखा था। हमारी कुल परम्पर को
ही देगी। माधुरी का पति भी अपनी पत्नी से रुष्ट था कि वह
को एक बच्चे का बाप नहीं बना सकती। एक तो बेचारी को अपना
था उस पर लोगों के ताने। लेकिन अबला जो ठहरी। सब कुछ
किए जाती थी। घर के लोगों ने उसे लौंडी के बराबर समझ
था। दिन भर काम में जुटी रहती थी। लेकिन फिर भी कोई खुश
रहता था।

एक पडोसिन ने कहीं से किसी बच्चे को गोद लाने का परामर्श दिया तो
आग बबूला हो गई। उसका विचार था कि गोद लिया बच्चा अपना
हो सकता। कोई पराया बच्चा उस के धन दौलत का उतराधिकारी
भला यह कहां का न्याय था। यह महाशया तो जादू टोने में अटल
स रखती थीं। इस लिए उसे यह आशा भी थी कि किसी दिन उस के
सफल हो ही जायेंगे।

× × × ×

ौर दिनों की तरह आज भी सारा काम निपटा कर वह घर के पिछले
में बैठ कर सूर्यास्त का दृश्य देखने लगी। न जाने उसने कितने
यहीं से देखे थे। लेकिन आज अकारण ही इस दृश्य से उस का हृदय
ा हो उठा। संदीप नीचे आंगन में पड़ोसियों के बच्चों के साथ खेल
। उस के सुकुमार मुखड़े को देखकर माधुरी की आंखें चमक उठीं।
अरुण प्रकाश में देदीप्यमान क्षितिज की ओर दृष्टि फेर कर अनजाने
ी यादों ने एक बार फिर करवट ले ली। उस के अतीत का वह
चित्र जिसे वह अपने स्मृतिपट से हटा देना चाहती थी, आज फिर
ि ात कलाकार की तूलिका के स्पर्श से स्पष्ट हो उठा।

ा ! कैसी काली थी वह रात। रह-रह कर बादल की गरज और
से ा कड़क से दिल दहल उठता था। माधुरी की ननद हस्पताल में
र। उसके सिरहाने बैठे-बैठे ही उस को एक झपकी लगी थी।
ो के जोर-जोर से रोने की आवाज ने उसे चौंका दिया। उस ने

घबरा कर वार्ड के दोनों ओर सोए हुए रोगियों पर दृष्टि डाली, लेकिन वे तो समस्त पीड़ाओं को भूल कर निद्रा देवी की गोद में बेसुध पड़े थे। माधुरी ने जरा कान लगा कर सुना तो मालूम हुआ कि आवाज़ वार्ड के पार वाले कमरे से आ रही थी। न मालूम कौन रोगी वहां था। माधुरी रुक न सकी। धीरे-धीरे वार्ड को पार करके कमरे के समीप पहुंची। उस का दिल धड़कने लगा। झांक कर कमरे के भीतर देखा तो कोई स्त्री बैड पर लेटी हुई दिखाई पड़ी थी। पास ही कोई व्यक्ति द्वार की ओर पीठ किए हाथों में किसी सोते हुए शिशु को लिए फूट-फूट कर रो रहा था। नर्स डाक्टर पास में कोई नहीं था। माधुरी सिर से पांव तक कांप गई। उसने धीरे से द्वार खोला और भीतर आ गई। पुरुष ने पलट कर पीछे देखा। "सिन्हा साहब" ...माधुरी चीख पड़ी और दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गई।

माधुरी जब कालिज में पढ़ती थी तो राजेश सिन्हा वहां प्रोफेसर थे। वह इन को भली भांति जानती भी नहीं थी। फिर भी उस के हृदय में प्रोफेसर के लिये असीम श्रद्धा और भक्ति थी। उन को इस अवस्था में देख कर माधुरी का हृदय मानों टुकड़े टुकड़े हो गया।

दुःख का वेग ज़रा कम होने पर राजेश ने भी माधुरी को पहचान लिया। थोड़ी देर के लिए उसकी आंखें चमक उठीं। उस ने अपनी गोद का बच्चा माधुरी की गोद में डाल दिया फिर गले को ज़रा साफ करके करुणार्द्र स्वर में कह उठा, "माधुरी! मैं ने कभी सोचा नहीं था कि आधी रात के रुदन को परमात्मा सचमुच सुन लेता है। यह मेरी पत्नी है। तीन दिन पहले इस ने इस शिशु को जन्म दिया था, लेकिन अभी-अभी स्वयंमेव इस को अनाथ करके चली गई। जाते जाते कह गई है कि इस को किन्हीं ऐसे हाथों में सौंप देना जहां बेचारे को ममता के दो चार आंसू मिल सकें। माधुरी! मैं जानता हूं कि तुम एक स्नेहमयी नारी हो, इस लिए अपनी निधि को तुम्हें भेंट करता हूं। मुझे आशा है कि मेरी इस भेंट को ठुकराओगी नहीं", इतना कह कर वह मृत पत्नी के शव से लिपट गया।

× × ×

फिर क्या था उस दिन से माधुरी के जीवन में सचमुच माधुर्य आ गया। उस के सूखे उपवन में हरियाली छा गई। घर वालों के विद्रोह की परवाह न

करके वह इस शिशु को पालने लगी। अबला नारी इस छोटे से सहारे को पा कर सबला बन गई।

माधुरी की ससुराल वालों को बच्चे के प्रति उस का इतना स्नेह देख कर जलन होती थी। सास कहती थी पता नहीं किस के बच्चे को हस्पताल से उठा लाई। न मालूम किस जात का है, किस खानदान का है। पति तो संदीप की ओर देखता भी नहीं था। भला पुरुष के हृदय में इतना प्यार कहां है कि किसी पराये पुत्र का बाप बन सके।

ज्यों ज्यों माधुरी का स्नेह संदीप के प्रति बढ़ने लगा त्यों त्यों उस के घर वालों की घृणा भी बढ़ती गई। वात्सल्य की छत्रछाया में पलते हुये अबोध बालक को दो तीन साल तक मालूम न हो सका कि उस की नन्ही सी जान के भी कई दुश्मन हैं। लेकिन अब वह बिल्कुल अबोध नहीं था। वह रह रह कर मां से पूछता, "मां मेले पापा मुझ से प्याल क्यों नहीं कलते। मालते क्यों हैं। बबलू तो कहता है कि उछकी दादी उछे गोद में ले के खाना खिलाती है।" अबला नारी मासूम बच्चे के इन प्रश्नों का क्या उत्तर दे। वह अपने दिल के टुकड़े को क्या बताये कि न तो यह उस की दादी है और न ही यह उस का पापा। वह केवल उस के ममता रूपी पौधे से फूटा हुआ अंकुर है। उस के देवता की देन है। माधुरी ने संदीप के जीवन के इन महान सत्यों को आजीवन अपनी छाती में दबाये रखने का प्रण किया था। उसे डर था कि कहीं इन बातों को जान कर वह उस से विलग न हो जाए। इस कल्पना से ही वह कांप उठती थी।

आंचल से अपनी आंखों को पोंछती हुई वह अभी उठ ही रही थी कि उसे संदीप के रोने की आवाज़ सुनाई दी। घबरा कर भीतर आ गई तो देखा कि उस का पति संदीप को बांस की छड़ी से निर्दयता से पीट रहा है। पास ही उस की सास हाथों में सिर थामे रो रही है। स्थिति स्पष्ट थी। संदीप ने खेल में दादी को प्यार से मारा है। अब उस का पति अपनी मां पर किए गए अत्याचार का बदला ले रहा है। हाय! इन लोगों को क्या हो गया है। उस ने छड़ी पति के हाथों से छीन ली और संदीप को गोद में उठा लिया। रोते हुए बालक के स्पर्शमात्र से नारी का नारीत्व जाग उठा। मां का ममत्व जाग उठा। वह क्रोध में भर कर चिल्ला उठी, "मां जी! तुम

लोगों ने आज तक मुझ पर बहुत अत्याचार किए। उन को मैं ने सह लिया। लेकिन अब नहीं सह सकती। सदीप तुम लोगों की आंखों का कांटा बन रहा है, लेकिन मैं इस के बिना जीवित नहीं रह सकती, इसलिए इसको लेकर सदा...सदा के लिए इस घर से विदा होती हूं" इतना कह कर वह घर से बाहर हो गई।

दूर क्षितिज में टिमटिमाता हुआ दीपक बुझ गया और सध्या दूसरा दीपक जला कर छिप गई। उस के प्रकाश में तारों ने देखा कि एक स्त्री अपने लाल को छाती से लगाए निर्भीक हो कर किसी अज्ञात मंज़िल की ओर बढ़ रही है।
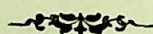
मुरझाये फूल महक उठे

दुर्गादत्त शास्त्री

✱

गिरधारी आज अपने पिता के क्रिया-कर्म से निवृत्त हो गया। संध्या का समय था। गिरधारी, उस की मां, उस की बहिन राधा और भाई मनोहर बैठे थे। सभी उदास थे। उन्हीं की भांति टिमटिमाता दीपक भी उदास था। तभी दो अस्थिपंजर पड़ोसी, ला० राम दास तथा वृद्धा लच्छो कमरे में प्रविष्ट हुए। आज लोकाचार समाप्त था।

बनावटी हमदर्दी, बनावटी आहों, आंसुओं सब का मृत प्राणी के क्रिया-कर्म के साथ मानों क्रिया-कर्म हो गया हो चुका था।

सभी हतप्रभ थे। वातावरण करुण एवं गम्भीर था। तभी लाला जी बोले—'गिरधारी बेटे ! कल स्कूल जाना है। तीन-चार महीने की बात है। परमात्मा तुझे सफलता दे। कहीं छोटी-मोटी नौकरी लग जायेगी तो दुर्दिन सुदिन में बदल जायेंगे। बाह रे प्रभु तेरी लीला। अच्छा तो फिर कल स्कूल जा रहे हो ना ?'

'अच्छा, गिरधारी की मां चलता हूं। गिरधारी बेटे, मेरे योग्य कोई भी काम हो तो मुझे जरूर बताना, संकोच न करना। जेहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।' इतना कह कर लाला जी जाने को खड़े हो गये। 'लच्छो चलेगी क्या ?' 'नहीं लाला जी आप चलिये' लच्छो ने जवाब दिया। 'अच्छी बात है, अच्छी बात है तू बड़ी दयामयी है लच्छो।' गिरधारी ने कहा—'मोहन ! लाला जी को घर तक पहुंचा दे।'

घर के प्राणी आंखें मूंदे पड़े थे। सम्भव है सो गये हों। पर गिरधारी न सो सका। विकट समस्याएं अपनी डरावनी सूरत के साथ उस गरीब को एकाकी और असहाय पा कर बड़ी भयंकरता से भयभीत करने लगीं।

सर्वत्र घोर दुःख घन उसके भाग्याकाश पर छाये गर्जन-तर्जन कर रहे थे।

हमारी गाड़ी कैसे बढ़ेगी ! मोहन का क्या होगा ! राधा का क्या होगा ! चार प्राणियों के लिये रूखा-सूखा कैसे जुटेगा ?

परीक्षा को अभी तीन चार महीने, पर पढ़ने के लिये आवश्यक निश्चिन्तता और निश्चयशीलता कहां से लाऊं ? नहीं, अब मेरा पढ़ना नहीं होगा। मोहन को अवश्य पढ़ाना है। राधा को भी अच्छे घर-वर के योग्य बनाना है। मुझे कोई काम करना होगा। क्या करूं ? दुकान खोलूं !

हां, दुकान खोलूंगा। कुछ स्टेशनरी, कुछ टाफियां भी ठीक रहेंगी। मीरा बख्श बागवान से मिलूंगा। बड़ा नेक आदमी है। कहूंगा, अपनी तैय्यार सब्ज़ी मुझे दे दिया करो। मैं बेच दिया करूंगा। एक सौ रुपये से काम चल जायेगा। लाला जी रुपये ज़रूर दे देंगे। बस यही ठीक है। सारी रात गिरधारी की इसी उधेड़बुन में बीती। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उस की कुछ आंख लगी।

गिरधारी प्रातः लाला जी के पास गया। 'आओ गिरधारी आओ, बैठो।' गिरधारी उन के पास बैठ गया और झिझकते हुए बोला, 'लाला जी मैंने पढ़ने का विचार छोड़ दिया है। मैंने सोचा है कि मैं दुकान करूं।' 'तू दुकान करेगा ! दुकानदारी बड़ी कठिन चीज़ है बेटे। फिर उसके लिये धन चाहिये। बिना पूंजी के दुकान कैसे चलेगी।' लाला जी अभी कुछ और भी कहते पर गिरधारी बीच में ही बोल उठा—'लाला जी जिस ढंग की दुकान मैं खोलना चाहता हूं, उसके लिये अधिक धन नहीं चाहिये। और जितना चाहिये उतना... उतना...' कह कर गिरधारी रुक गया। 'हां हां रुक क्यों गये ?' 'उतना धन आप से मांगने आया हूं।' गिरधारी ने यह वाक्य बड़ी आशा और भरोसे से दोहराये। 'लाला जी मुझे केवल एक सौ रुपया चाहिये। आप जितना कर सकते हैं कीजिए शेष के लिये कुछ और करूंगा।'

साथ ही उसने दुकान की योजना भी लाला जी के समक्ष रख दी, लाला

जी कुछ देर सोचते रहे, सोचते रहे। गिरधारी उनके मुख पर दृष्टि गड़ाये रहा। 'काम कुछ टेढ़ा है गिरधारी लाल! मेरी मानो तो मैं यही कहूंगा कि तुम्हें पढ़ना ही चाहिये।' गिरधारी कुछ विचलित हो उठा, बोला—'लाला जी अब मेरा पढ़ना कैसे हो सकता है? निर्वाह कैसे होगा? चार प्राणियों के पेट का प्रश्न है। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं स्वयं नहीं पढ़ सका पर अपने भाई को पढ़ा सकूं। अब दूसरा कोई चारा नहीं।' 'तुम ठीक कहते हो—लाला जी ने कहा। पर किसी दूसरे से भी यदि बातचीत कर लेते तो अच्छा था।' 'किस से पूछूं! बिना आप के इस समय कौन दूसरा हम लोगों का सहारा है लाला जी?' गिरधारी ने उत्तर दिया।

'अच्छी बात है! मैं तुम्हें सौ रुपया दे देता हूं, ले जाओ।' गिरधारी ने अपने अध्यापकों को भी अपनी कथा सुनाई। सभी ने उस का उत्साह बढ़ाया। अध्यापकों में एक मौलवी थे, बड़े ही दीनदार। वे उस पर बहुत ही मेहरबान थे, बोले—'लड़के! जल्दी काम शुरू कर दे, खुदा बड़ा कारसाज है। उस की रहमत जरूर तेरी मदद करेगी।' गिरधारी ने काम शुरू कर दिया। काम चल निकला। बागवान मीरां बख्श अपनी सारी सब्जी कोई दो तीन टोकरे बिना पैसे उस की दुकान पर रख देता, और गिरधारी बिकने पर प्रतिदिन मीरां बख्श का हिसाब चुका देता। वह लड़के की ईमानदारी पर बहुत खुश था। एक दिन मीरां बख्श बोला—'गिरधारी लाल! तुम एक गाय क्यों नहीं पाल लेते? अरे उसके घास चारे का प्रबन्ध तो तुम्हें मैं ही कर दूंगा।' विचित्र सयोग था। आज ही गिरधारी की मां ने गौ के लिये इच्छा प्रकट की थी और आज ही यह सब अचिन्तित लाभ प्रसंग अपने आप उपस्थित हो गया। गिरधारी ने बड़े मीठे ढंग से कहा—'मियां! फिर मुझे तुम्हीं गाय ले दो न।' 'अरे ले क्या दूं भैय्या! मेरे साथ चल और ले आ। लेने कहीं बाहर थोड़े जाना है? मेरे पास दो गायें हैं, जो पसन्द है उसे तेरे खूंटे पर बांध दूंगा।' गिरधारी ने कृतज्ञता के स्वर में कहा—'मियां! तुम्हारा किन शब्दों में धन्यवाद करूं। मैं तुम पर ही सब छोड़ता हूं। कितने पैसे दूं।'

'अरे पैसे कहां जा रहे हैं? जब जरूरत होगी ले लूंगा।'

अच्छा, मैं अभी जा रहा हूं। दो बरस बीत गये। आज उसके भाई मोहन की परीक्षा का परिणाम निकला है। वह अपने स्कूल के सभी लड़कों

में आगे था। वह खुशी-खुशी भाई के पास आया और बोला—'भैय्या मैं पास हो गया।' 'क्यों न होता ? तूने परिश्रम कौन कम किया था ? तेरे जैसे सुशील बालक कब फेल होते हैं ? अच्छा, घर चल मां के चरणों में सिर झुकाना और फिर उसे यह शुभ संवाद सुनाना। मैं भी तेरे पीछे-पीछे आ रहा हूं, और सुन हलवाई को कहते जाना पूरे पांच सेर लड्डू अभी तैयार कर दे।'

लड्डू तैयार हो गये। गिरधारी ने उन्हें लिफाफों में डाला। फिर स्नेही, उपकारी अध्यापकों के पास गया, मोहन भी साथ था।

मौलवी साहब ने तो दोनों को गले से लगा लिया और असीसते हुए उस निर्मल हृदय, खुदापरस्त इन्सान ने गद्गद् कण्ठ से कहा—'बेटे ! तुम्हारी आने वाली घड़ियां रोशन हैं।'

अल्लाहपाक सब किसी को तुम्हारे जैसी नेक औलाद बख्शे। गिरधारी भी अत्यधिक प्रभावित और गद्गद् हो उठा, उसने कहा—'मोहन, मौलवी साहब को सलाम करो, यह सब इन की दुआओं की ही बरकत है। अच्छा अब इजाजत दीजिए, सलाम।' 'खुश रहो। बस परवरदिगार की रहमतें हमेशा तुम पर बरसें।' अब दोनों भाई लाला रामदास जी के यहां पहुंचे। फिर लच्छो बुढ़िया के घर गये।

उस गरीबनी का इस दुनियां में दीनबन्धु के सिवा दूसरा कोई नहीं था। गिरधारी ने कहा—'मोहन ! बूढ़ी मां के चरण छूओ। बूढ़ी मां तेरा मोहन पास हो गया, ले मीठा मुंह कर ले और इसे आशीर्वाद दे।' बुढ़िया ने हृदय से आशीर्वाद दिया। 'मेरी राम लक्ष्मण की जोड़ी जुग-जुग जिये। तुम दोनों पास हो गये मेरे बच्चो। अच्छा, कराओ मेरा मुंह मीठा।' मोहन ने एक लिफाफा उसके हाथ में दे दिया। 'अच्छा; मोहन अपना मुंह खोल बेटे ! तू भी। इस में कितने लड्डू हैं रे !' गिरधारी ने कहा—'मां ! पांच।' 'तू बड़ा सयाना है। पांच ही चाहिये। दो तुम्हारे एक राधा बिटिया का, एक तुम्हारी माता का और एक मेरा। तुम दोनों यहां खाओ। मैं तुम्हारे मुख में डालती हूं। एक-एक उन दोनों को देना और कहना लच्छो ने मुंह मीठा करने को दिये हैं।' मोहन को सुन कर हसी आ गई। पर गिरधारी ने गम्भीरता से कहा—'मोहन !' 'अरे हंसने दे इसे क्यों रोकता है ? हंस बेटे।

आज मैं भी हंसूंगी। किसी क्रूर ने मेरी हंसी मुझ से छीन ली थी। पर आज मैंने उसे भी क्षमा किया।' यह कह कर वह अपने पोपले मुंह से हंसी पड़ी। बरवस दो आंसू उसके नेत्रों से बाहर उछल पड़े। 'अच्छा चलो, घर चलो। सभी साथ-साथ रवायेंगे।' घर पहुंचे। 'गिरधारी की मां तुझे बधाई देने आई हूं। साथ ही मीठा मुंह कराने आई हूं। अरे मेरी बिटिया कहां है?' गिरधारी की मां ने कहा 'बूढ़ी मां, वह आज बहुत खुश है। सहेलियों को लड्डू बांटने गई है।' 'अरे आज तो सब को खुश होना चाहिये। आज मैं भी बहुत प्रसन्न हूं। जीने को मन बिल्कुल नहीं। पर अब जीना चाहती हूं। कम से कम तब तक जरूर जीना चाहती हूं, जब तक गिरधारी की बहू नहीं देख लती।' गिरधारी की मां ने हसते हुए कहा—'बूढ़ी मां जान पड़ता है ईश्वर तेरी इच्छा जल्द पूरी करने वाला है। बात पक्की हो गई है।' 'कब?' 'आज ही' सब हंसने लगे थे।

काव्य-धारा

भारती माताओं को नमस्कार

कृष्ण स्मैलपुरी

※

ऐ हिन्द की सम्मान विधाताओ, नमस्कार
शक्ति की दमकती हुई गाथाओ, नमस्कार
इतरों में बसे पुष्प की मालाओ, नमस्कार
दुनियां की महाशक्तिओ, ज्वालाओ, नमस्कार

ऐ विस्व की शोभाओ, नमस्कार नमस्कार
ऐ भारती माताओ, नमस्कार नमस्कार

ऐसे हैं कहां उच्च, अछूते मेरे उद्गार
वाणी में मधुरता है, न कुछ शुद्ध हैं आचार
वह सिंधु हो तुम जिस का कहीं आर न है पार
मैं तुच्छ सा बिन्दु न मेरा मोल न विस्तार

लीलाओं का किस तरह करे लेखनी आकार
ऐ भारती माताओ नमस्कार नमस्कार

सत् धर्म के आकाश के यह चांद सितारे
तुम ही ने हैं चमकाए भी, तुम ही ने संवारे
विद्वान महापुरुष सकल विश्व के प्यारे
ऐ पुष्प लताओ हैं तुम्हारे ही दुलारे

सुरभि से है जिनकी यह महकता हुआ फुलवार
ऐ भारती माताओ नमस्कार, नमस्कार

भारत के अमर वृक्ष की रखवार तुम्हीं हो
इस देश के इतिहास का श्रृंगार तुम्हीं हो
गत काल के संगीत की गुंजार तुम्हीं हो
गौरव की भरी नाव की पतवार तुम्हीं हो
पृथ्वी के गले का हो दमकता हुआ तुम हार
ऐ भारती माताओ नमस्कार, नमस्कार

शक्ति, पति भक्ति की वह दिखलाती रही हो
हर देश की महिलाओं को शरमाती रही हो
तुम वह हो जो यमराज पै छा जाती रही हो
ब्रह्मा विष्णु शिव पै विजय पाती रही हो
अमृत की सरोवर हो चमत्कारों की भण्डार
ऐ भारती माताओ नमस्कार, नमस्कार

नस-नस में वह तप तेज की ज्वाला थी धधकती
वह विजलियां तुम में थीं भरी सत-व्रत की
करता था यदि तुम पै कोई पाप की दृष्टी
क्षण भर में वहीं भस्म वह हो जाता था पापी
पृथ्वी को हिला डालती थी एक ही ललकार
ऐ भारती माताओ नमस्कार, नमस्कार

जो कल था वही आज है सम्मान तुम्हारा
ऊंचा है गगन से कहीं यह स्थान तुम्हारा
सब देवतागण करते हैं गुणगान तुम्हारा
भगवान को भी रहता है नित ध्यान तुम्हारा
संसार का हर युग में हो करती रही उद्धार
ऐ भारती माताओ नमस्कार, नमस्कार
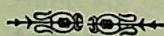
स्वतन्त्रता की आस

शंकर शर्मा पिपासु

※

मन में स्नेह के दीप जला लो भाई।
ले कर स्वतन्त्रता आस नई है आई॥

संघात नहीं प्रिय बात करें हम सब से
पहले तोलें फिर बात करें प्रिय ढब से
उन्नत हों अवनत नहीं हमें अब होना
भर दें सुख से जग का अब कोना कोना

है चमक दमक से यही संदेसा लाई
मन में स्नेह के दीप जला लो भाई

जैसे दीपक से दीप जला करता है
जल कर प्रकाश से विश्व भरा करता है
वैसे जन जन से ज्ञानालोक जगा कर
हों पुरुष देव फिर नूतन साज सजा कर

अज्ञान कुहू की यों ही करो सफाई
मन में स्नेह के दीप जला लो भाई

रावण को जीत थे राम अयोध्या आए
दीपक माला उस दिन को याद दिलाए
हो राम-राज्य फिर कहो न क्योंकर अब से
यदि संभल न पाएं संभलेंगे फिर कब से

देती शिर धुनकर दीपक शिखा दुहाई
मन में स्नेह के दीप जला लो भाई

आजाद बनो और मोहन दास कहाओ
बन कर सुभाष शुभ आस देश हर्षाओ
फिर कहो न क्यों कर लक्ष्मी हो आनन्दित
हो भला न क्यों परतन्त्रता भी स्पन्दित

जय हिन्द कहो बन जवाहर लाल सहाई
मन में स्नेह के दीप जला लो भाई

जीने का अर्थ

भुवनपति शर्मा

I

जीवन के हर नये मोड़ पर
कुछ नया पुराना मिल जाता है
हर संध्या को उगा सितारा
होती प्रात तो ढल जाता है
कितने बने विचार नये
पर आधार पुरातन ही है
हर नवीन लेखन शैली में
भाव पुराना चल जाता है
धुंधली परतें खोल देख लो
गहराई से नाता जोड़ो
नव स्वर गायन की बेला में
घायल मन रिसता जाता है।

II

हर विश्वास आस्था अपनी
नव जीवन का उत्साह नया
है बना छलावा मधुर स्वप्न
देता पीड़ा का भार नया
हमने जिसको माना अपना
सर्वस्व दिया पर कहा नहीं
वह चला गया बन एक स्मृति
जीवन का अर्थ ही बदल गया
अपने अरमानों की होली में
कुछ स्नेह सुमन थे शेष रहे
अब आज लुटाता हूं उन को
पाने वह बदला अर्थ नया।

वहीं का एक

सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम'

※

सपने में एक घर देखा
शायद वह अपना ही था
नहीं नहीं
मालूम नहीं
किसका था !
सपने में एक घर देखा !

उस घर की दीवारें
टूटी फूटी मैली हैं
द्वार चिरचिराते हैं
और
वातायन सब
बिना शीशों के हैं।

उस में प्रवेश पाने का
कोई नियम नहीं
कोई रोक नहीं;
इस लिये—
चला आता है बेखटके
हर कोई
चाहे वह आगंतुक

चमगादड़ हो
गीद्ध हो
रीछ हो
या बन्दर
उल्लु क्या
उल्लु के पट्ठे तक
बीठ जाते हैं वहां
हल्ला गुल्ला मचाते हैं।

दिन और रात
वहां सब बराबर हैं
सावन के अंधों के पास
वह गिरवी पड़ा है
इसलिये
मूली और गाजर में
वह भेद नहीं रहा।

वहां—
चोंच ही चोंच हैं
और इस से भी ऊपर
महा चोंच हैं।
मोर
पपीहे
कोयल का
अथवा कि राज हंस का
वहां पर हो आगमन कभी
तो—
फड़ फड़
खड़ खड़
ओं, अूं, ओं में से
आवाज यह आती है:
जाओ
अपना काम करो

हमारा आराम न भंग करो
तुम सभ्यता के चिराग
——जाओ——
मूर्खों में नाम करो
हम एक हैं
हम एक रहेंगे ।

और वह आगंतुक
सोचता है :
इस घर का क्या होगा
और तब तक
(इन सोचों के बीच में)
वह सीख लेता है
तत्र-वासियों की भाषा
कहलाता है
वहीं का एक
जो
बेरोक आता और जाता है
भूल कर अपनी
भाषा
अपनी सस्कृति
और अपनी सभ्यता
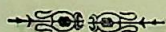
मिलन

राजेन्द्र मोहन कौशिक

※

अंतर विशाल
है ज्ञात मुझे
तुम व्यस्त अधिक
पर आस गहे मैं भी बैठा
तुम को पा लूंगा
निश्चय है

सर्वोत्तम हो पुरुषोतम !
तुम हो सूर्य प्रखर
मैं दीप क्षीण
तुम ज्योतिर्मय
मैं अंश मात्र
पर विलय कभी तो होगा ही

अधिकारी हो
तुम निर्माता
मैं तुच्छ सृष्टि
कठपुतली हूं
वर दोगे यह विश्वास मुझे
उद्धार कभी तो होगा ही

तुम नर्तक हो
जग में जाने
मैं नूपुर बन बध जाऊगा
पग थिरकेंगे तो गाऊगा
मेरे गीतों से गूंजेगा
मानवता का हर वातायन

सारा दर्द तुम्हारा

मान भार्गव

※

अब से मैं जो गीत लिखूंगा
(वह) तुम को बहुत प्यारा होगा
उस में मेरा कुछ न होगा
सारा दर्द तुम्हारा होगा
इतने नियंत्रण और संयम से
सदा दर्द को तुम ने पाला
जिस ने मन में जोत सा जग कर
अन्तराल को मोम सा गाला
गल कर जिस को मिलना चाहा
विछोह उसी ने ही दे डाला।
तपन की इस बेला में अब
मेरे नयनों से उमड़ा हर
आंसू ही तेरा सहारा होगा
अब से मैं जो गीत लिखूंगा
(वह) तुम को बहुत प्यारा होगा
उस में मेरा कुछ न होगा
सारा दर्द तुम्हारा होगा।

तेरे दिल की कसक भी होगी
तेरे दिल की जलन भी होगी।
तेरी ही लय तेरा स्वर होगा
तेरे दिल का मर्म छुएगा।
तेरे ही दिल की धड़कन भर
तेरे श्वास उच्छवास समो कर
इस का हर छन्द सवारा होगा
अब से मैं जो गीत लिखूंगा
(वह) तुम को बहुत प्यारा होगा
उस में मेरा कुछ न होगा
सारा दर्द तुम्हारा होगा।

टूटा प्रश्न-चिन्ह

आदर्श प्रकाश 'पीयूष'

मन के प्रश्न चिन्ह को मैं
टकटकी लगा कर घूरता हूं
जो घूम कर
पुनः सीधा हो गया है
अपने बाद
स्मृति रूप
एक बिन्दु मात्र छोड़ गया है
सोचता हूं—
समाप्ति ही होनी थी तो
पूर्ण विराम उचित था,
जीवन के अन्त में
यह प्रश्न चिन्ह
अधूरे पन का बोध कराता है
रिक्तता के कारण को
पूछता रह जाता है
आंखों से
उत्तर रूप में
एक बून्द
गिरती है,
टूट जाती है।
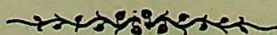
भगदड़

'मधुकर'

※

मेला है रंगों का
रंगों की दुनियां है
कच्चे हैं पुख्ता हैं
चमक-दमक न्यारी है
स्वामी निज स्वात्म के—
भृत्युयों के महरम हैं
खुशियों से अवगत हैं
वाकिफ हैं दुखों से
हर इक से परिचित
फिर भी अतृप्ति क्यों ?
आदत के बन्दी हैं
रसमों के कैदी हैं
कस्मों के आशिक हैं
सरावोर हो कर भी
बदरंग, उथले हैं
रंगों की भगदड़ है
रंगों की भगदड़ में

रंग वही होता है
तन-मन पर छा जाए।
रूप हैं बहुतेरे हैं
रूपों की नगरी है
रूपों के घेरे हैं--
भाषा उच्छ्वासों की
आमंत्रण ग्राहकों हित—
निजत्व हित जंज़ीरें
हिरदों हित बन्धन हैं
हंसते छवि-मुखड़े हैं
धन्दे मिस डसने हित—
फिर भी अतृप्ति क्यों ?
आदत के बन्दी हैं
रसमों के कैदी हैं
कस्मों के आशिक हैं
लोभी अहंकारों के
याचक हैं घिघियाते
रूपों के मेले हैं—
रूपों के मेले में
रूप वही होता है
दिखते ही भा जाए
अंगों पर रंगों के
घातक मुल्लमे हैं
नयनों में रूपों के
झिल-मिल फफोले हैं—
उत्सुक अभिसारों हित
आलिंगन मृत्यु हित—
बचकाना आश्वासन
आंसू मुस्कानों हित—
सब ही व्योपारी हैं
ठग हैं, बनजारे हैं—

मेरे हैं,
तेरे हैं
मतलब हित नाटक हैं—
रंगों के,
रूपों के
मेले में भगदड़ है
सब ही अपरिचित हैं
मेले का मेला ही
बिल्कुल अकेला है
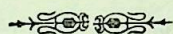
दु:खी हृदय

जानकी नाथ 'कौल'

※

दु:खी हृदय को नहीं सताश्रो
यह आशाश्रों का अन्तर है
इस के कण-कण में अन-बन है
इसका पल-पल मन्वन्तर है

करुण इसकी व्यथा-कहानी
व्यथित-व्यथा है इसकी रानी
पीड़ित पलकों से गिरता है
जीवन-झरना अन्-अन्तर है

इसके मन में राज इसी का—
शून्य-हृदय क्या साज किसी का ?
संशय-संगी इसको प्रति पल
शंकित करता निर्-अन्तर है

शीत-तप्तता 'कमल' कहां तक
सहन-शक्ति की परिधि में ला
गौरव-गर्वित कर सकता है
मज्जित होकर ही अन्तर है

पर अब दु:ख में ही सुख इसको
खिल कर इसके उर में भय है
निर्दय-नियति कहे देती है
कल ही इस में फिर अन्तर है

गज़ल

पीयूष गुलेरी

तुम रहते अपने दर्पण में ।
मन मेरा तेरे दर्शन में ।।

×

कितनी गहरी प्रीत है मेरी ।
तनिक उतर के देखो मन में ।।

×

फल खाने में क्या रक्खा है ।
जो सुख उसके बीज वपन में ।।

×

उनसे कैसे मिलना होगा ।
गई उमरिया इस उलझन में ।।

×

भूलने वाले भूल न पाए—
ऐसा जादू तेरे नयन में ।।

×

जब हो जाती प्रीत किसी से ।
आग भड़क उठती है तन में ।।

×

अनुपम-सा सुख मिल जाता है ।
मुझ को उन की मधुर जलन में ।।

×

वाणी भी शरमा जाती है—
सचमुच उन के रूप कथन में ।।

×

ढूंढने वाले पा लेते हैं—
अवसर पथ को प्रेम सधन में ।।

×

कोई बात को लाख बनाए—
हृदय लिखा रहता आनन में ।।

×

पढ़ने वाले पढ़ लेते हैं ।
जो होते हैं भाव नयन में ।।

×

ऐसे कभी नहीं देखे फिर—
गढ़े नयन जो मेरे मन में ।।

×

वह तो तपा हुआ सोना है—
सोता प्यार जो है बचपन में

×

कली-कली पर जोबन झूमा—
आज गए हैं वो उपवन में ।।

×

कजरारे अलसाए नैना—
भाग बदल सकते हैं छन में ।।

×

गली-गली में है यह चर्चा—
तड़प उठा 'पीयूष' कफन में ।।

गीत

श्याम दत्त 'पराग'

✻

बिन साजन सावन नहीं भाए।

मस्ती छाई मंद पवन पर,
तरुणाई है वन उपवन पर,
चातक का पी स्वर सुनकर,
नयनों से निंदिया उड़ जाए।
बिन साजन सावन नहीं भाए॥

मेघा रिम झिम बरसन लागे,
आंचल भू का सरसन लागे,
नील गगन में बिजली चमके,
तन मन भीतर आग लगाए।
बिन साजन सावन नहीं भाए॥

झरनों का कल कल कर गाना,
शशि का घूंघट में छिप जाना;
सुमधुर स्वरों में कोयल कूके,
बार बार जिय को अकुलाए।
बिन साजन सावन नहीं भाए॥

जब से रूठ गये रे सईयां,
सूनी अलकों की छईयां,
बन्दनियों की पायल छनके
छम छम छम नीर बहाए।
बिन साजन सावन नहीं भाए॥

सांझ ढली

राजेन्द्र बिन्द्रा

✳

सांझ ढली !
सांझ ढली, थकी थकी प्रात की चितवन। सांझ ढली !
गुनगुना रहा है समा लोरियां,
मिट गई समय समय की दूरियां;
बहक बहक पवन चले
महक महक स्वप्न पले,
छनक रहीं मधु भरी कटोरियां।

कली कली ! कली कली सो गई खामोश है मधुवन--। सांझ ढली !
सांझ ढली, थकी थकी प्रात की चितवन—। सांझ ढली !
क्षण मिटे घुटन के इन्तज़ार के,
पट खुले हैं मन के द्वार द्वार के;
उर के सुर-संगीत से
प्यार भरे गीत से,
डोर बंधे फिर से आर-पार के।

गली गली ! गली गली दीप जले रूप के आंगन—। सांझ ढली !
सांझ ढली, थकी थकी प्रात की चितवन—। सांझ ढली !
धूल भरे दिन को यों उतार के,
घुंघरुओं की लय को यों उभार के;
चन्द्र ज्योति-हार से
सोलहों शृंगार से,
कुमकुमी से तन को यों संवार के;

भली भली ! भली भली लग रही है रात की दुल्हन—। सांझ ढली !
सांझ ढली, थकी थकी प्रात की चितवन—। सांझ डली !

फासला

जितेन्द्र उधमपुरो

※

प्रिय ।
तुम और मैं —
नदिया के दो किनारे
रुके-रुके से
टिके-टिके से
सदियों से बिछुड़े
चाह लिये केवल —
मिलन की ।

अतृप्त वासना,
चिर प्यासी आत्मा,
रहते ताकते
एक दूसरे को
किसी अभिशप्त प्रेत से
नित्य, हर पल, हर क्षण
पर न मिल पाए
और मिल पाएंगे कभी ?
ऐसी कल्पना भी न कर पाते ।

केवल मैं

उपेन्द्र रैणा

※

मेरी नज़र उस कोण से उठती है जिस में हर कोई मर जाता है !
मेरी नज़र उस लमहें के लिए रुक जाती है,
जिस में हर कोई जी भर के जीता है !
मुझे बिन्दु बना कर जबरदस्ती किसी के माथे पर सजाया जाता है।
३१ दिसम्बर से पहली जनवरी तक मुझे एक युग बनाने को कहा जाता है।
जहां पर मैं एक नया कैलण्डर चढ़ा देता हूं !
मुझ से एक रेखा खींची जाती है ;
मुझ से मेरे को बाहर खींचा जाता है ;
अपने हाथों से बनाये हुये ताबूत में मुझे ठोंस कर
जबरदस्ती अपने से अलग किया जाता है।
और अपनी अर्थी में शामिल होने को कहा जाता है
वहां पर केवल मैं रहता हूं ;
मेरे कपड़ों को नीलाम किया जाता है !
कोई मेरा ब्लैक कोट खरीद कर,
पहन कर,
मेरी अर्थी में शामिल हो जाता है।
रेडियो पर एनौन्स किया जाता है।
सभी चेहरे पीले पड़ जाते हैं !
आदमी रोता है,
कुत्ते भोंकते हैं !

सभी काले रंग के पर्दे अपनी खिड़कियों में डालते हैं !
कैलण्डर में चढ़ी हुई तारीख उतर जाती है ;
मुझे सोटी बना कर अन्धे को मेरा सहारा दिया जाता है।
जो मैं खुद अन्धा हो कर उस अन्धे का साथी बन जाता हूं !
मुझे मौत बना कर हर जगह भेजा जाता है !
मुझ से हर एक घृणा करता है !
मैं बदनाम हो जाता हूं।
गली गली में मेरा चर्चा होता है।
मुझ से सभी दूर रहते हैं।
मुझे फर्स्ट एप्रिल का कार्टून बना कर
रद्दी टोकरी में फैंका जाता है ;
या कोई नकली सिगरेट बना कर
भरे बाजार में फैंक देता है !
कोई आर्टिस्ट हो कर मुझे पेंटिंग बना देता है।
और दीवार पर लटका कर,
मैं हर पास से गुजरने वाले को बार बार पूछता हूं !
कि मुझे मसीहा बना कर क्यों लटका दिया गया।
जो मैं खुद किसी मसीहा का सलीब बन चुका था
कोई नहीं सुनता,
मुझ पर एक और पेंटिंग चढ़ाई जाती है !
वहां पर "केवल मैं" रहता हूं
अपने ही आंखें अपने पर फेरते हुये ;
"केवल मैं" !
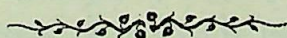
पशुवन में हिमकाल

जगदीश चन्द्र साठे

कहीं आसमान की छोटी सी टुकड़ी
उड़ती हुई धूल के कण के पहाड़ से टकरा गई है,
कहीं उस पहाड़ से द्रवित हो कर
मानव का सम्पूर्ण विचार बह निकला है ।
और नए युग के यन्त्रकार ने
उसे पैस्ट्योराइज करने के लिए बायलर में उढेल दिया है ।
हां, यह विशुद्ध भावना है, नया सकल्प है,
जिस में से नई बुद्धि का विकास होने वाला है,
वह युवक मन्दिर में
राम की प्रस्तर मूर्ति का सर काटना चाहता है,
कि कल कोई राम का अनुकर्ण न करे और
इतना आगे न निकल जाये कि युग युग से मानव
उसे मुहम्मद समझ कर उस के ही पीछे चलता रहे ।
चौराहे पर वह गान्धी का मुजसिमा नहीं चाहता,
वह तो वहां सब मार्ग बताने वाली पट्टी पढ़ना चाहता है
कि कहीं ऐसा न हो कि सत्य की खोज में
वह पुनः दुनियां से दूर पड़ जाए ।
वह नहीं चाहता रवीन्द्र ठाकुर का बस्ट
कि वह भावनाओं की चन्द्र किरणों के जाल में लिपटा रहे
अवश्य ही किसी यादव वश में, किसी नन्द गांव में,

कोई अद्भुत बालक आ जन्मा है
जिस की टोली ने इन्द्र की सत्ता
और संविधान को फिर से ललकारा है
और उस की पूजा का उन्मूलन किया है।
जनमानस से दूर विलग रहने वाले क्रूर कंस के शासन का
वह अवश्य ही ध्वंस करने वाला है।
कहीं आस्मान की छोटी सी टुकड़ी
उड़ती हुई धूल के कण के पहाड़ से टकरा गई है।
अभी अभी मैं ने समन्दर को कतरे में मिलाया है।
मैं ने उस बूंद के किनारों पर कुछ नई घास भी उगी देखी है।
शायद वहां एक नए जीवन का सृजन होने वाला है।
वहां निर्जन में नई सृष्टि
अपनी सखियों के साथ नहाने के लिए उतरी है।
तुम ने पूछा था क्या किसी आदमी ने जन्म लिया है,
और प्रलय में कितने इन्सान अपना जीवन खो बैठे हैं।
तुम ठहर गए हो कि कोई पशु इन्सान बन गया है।
और आकुल हो कि कोई इन्सान फिर पशु बन गया है।
नए समाज की क्रान्ति का प्रति प्रश्न हैं कि
पशु को आदमी बनने का श्रेय ही क्या है ?
इसी लिये मानव सभ्यता अभिशप्त सी मौन है, क्योंकि
क्रान्ति का तकाज़ा है कि जब तक सभी इन्सान नहीं बन जाते
सब समाज पशुसमाज ही रहना चाहिए। और यह भी
कि जब तक इन्सान पशु है
उसे संघर्ष करना है, लड़ते रहना है।
इस पैस्ट्योराइज़शन के बायलर में किसी की स्मृति चिल्ला रही है ;
क्रूसेडर के हाथ में क्रास भी है, कोई अज़ां दे रहा है
मुजाहिद की जमात में मसावात है,
और फिर एक शोर उठ रहा है—
मारो, मारो, कि नाली बन्दूक में ज़ोर है,
चारों ओर आकाश में वह तुमुल नाद भर गया है, कि
कहीं आस्मान की छोटी सी टुकड़ी उड़ती हुई

धूल के कण के पहाड़ से टकरा गई;
आज पशुवन में फिर आवेश भर गया है,
क्रन्दन, आक्रोश और हाहाकार मच रहा है।
जन-जन को सदा से कोई पागल, कोई उन्मत्त,
कोई उच्छृङ्खल, झकझोर कर आत्महत्या कर लेता है।
और आज नया चिन्तन बोध दिमाग में खुल रहा है,
कि समस्त मानव मान्यताओं के बाद
बायलर में घुल रहे हैं।
हिंस्र समाज का प्रति शोध आज ऊफान में है,
तथा दासता और कठोर विधि का आह्वाण कर
एक नए हिमकाल की ओर अग्रसर हो रहा है
जहां युद्ध द्वारा रक्तसिञ्चन से शान्ति की प्रत्याशा
और वैर के विषपान से सान्त्वना की अपेक्षा है।
हां, समस्त मानव के लिये एक और दीर्घ हिमकाल।